श्यामल काया गोरी छाया

(संस्कार काल)

लेखक
डॉ. डी.एस. शुक्ला

सुलभ प्रकाशन
लखनऊ

प्रकाशक :
सुलभ प्रकाशन
17, अशोक मार्ग, लखनऊ-226 001
दूरभाष : 0522-2288381, 09415102821

कृति स्वामित्व : लेखक

ISBN : 978-93-86507-05-1

प्रथम संस्करण : वर्ष **2019**

मूल्य : **₹ 250.00**

मुद्रक
ए.पी.ए.सी., दिल्ली

SHYAMAL KAYA GORI CHHAYA

By– Dr. D.S. Shukla

समर्पण

पं० द्वारका प्रसाद जी शुक्ल (रिटायर्ड जिला जज)

अक्षरारंभ-संस्कार- मैं और मेरे पितामह मेरे 'प्रथम गुरु'

-डॉ. डी.एस. शुक्ला

नीरज परिकल्पना

प्रस्तुति

श्यामल काया
गोरी छाया

(संस्कार काल)

कृतज्ञता ज्ञापन

शिवभक्त होते हुए भी मेरे पितामह राम के 'मर्यादा पुरुषोत्तम' रूप पर श्रद्धा रखते थे। वहीं चातुर–मंडल के विख्यात कवि और मेरे चाचा पं बालकृष्ण मिश्र जी तर्क के राम के प्रशंसक थे। बालकृष्ण जी के राम और कृष्ण दोनों को महामानव मानकर लिखे 'धनञ्जय एवं 'जल–समाधि' शीर्षक के दो खंड काव्य अत्यंत लोकप्रिय हुए। इस प्रकार 'तर्क और श्रद्धा के राम' की अवधारणा मुझे विरासत में मिली। परिवार जनों को कृतज्ञता से स्मरण करने की परंपरा रही है अतः मैं अपने पितामह पं0 द्वारका प्रसाद जी शुक्ल (जिनकी स्मृति को यह कृति समर्पित है) और चाचा बालकृष्ण मिश्र को सादर नमन करते हुए श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूँ।

शम्भुनाथ जी से चर्चा के समय लक्ष्मण के राम की छाया होने का ज़िक्र होने पर **'श्यामल काया गोरी छाया'** में रामकथा में लक्ष्मण के योगदान को रेखांकित करते हुआ एक लेख लिखा जिसे उपन्यास रूप में प्रस्तुत करने की प्रेरणा मिली। श्री आर.सी. त्रिपाठी साहब जो प्राचीन इतिहास और ज्योतिष के विद्वान् हैं, ने रामकथा के वर्णित स्थलों की भौगोलिक एवं वानस्पतिक संरचना के बारे में बताते हुए पुस्तक में दिए आधुनिक और पुरातन मानचित्रों को उपलब्ध कराया। मैं इन दोनों महापुरुषों को हृदय से धन्यवाद देते हुए कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

मेरे अभिन्न मित्र व छोटे भाई श्री आर.सी. श्रीवास्तव ने सबसे पहले इस पांडुलिपि को पढ़कर अपने अमूल्य सुझाव द्वारा इसे परिष्कृत करने में योगदान दिया जिसके लिए मैं उनका आभार व्यक्त करता हूँ।

मेरे पुत्रवत् मित्र श्री दिव्यरंजन पाठक जी ने हमेशा की तरह इस पुस्तक के स्वरूप को परिमार्जित करने में जो सहायता की उसके लिए वह मेरे साधुवाद के पात्र हैं।

इस बार मेरे पुत्र गौरव, वैभव तथा पियूष दूरभाष और ई–मेल के माध्यम से मेरे सहायक हुए। यह लोग मुझे उत्साहित करने के साथ समय–समय पर अपने युवा दृष्टिकोण और बहुमूल्य सुझाव देते रहे। इन तीनों को मेरा विशेष आशीर्वाद।

हमेशा की भाँति मेरे प्रकाशक श्री वीरेन्द्र कुमार बाहरी एवं 'तरुण' को मैं विशेष रूप से धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ जिन्होंने इतने अल्प समय में इस पुस्तक को प्रकाशित किया।

कोई भी कृति प्रकाशन के बाद पाठकों की सामग्री हो जाती है। यह पाठकों पर निर्भर करता है कि वह कृति को कितना स्नेह प्रदान करते हैं। पाठकों की स्वीकृति की अपेक्षा में–

–डॉ. डी.एस. शुक्ला

मो0 :– 9415469561

e-mail: dsumeshdp@rediffmail-com

18/378 इंदिरा नगर,

लखनऊ– 226 016

बड़ों के आशीर्वचन

RC Tripathi, IAS (Retd.)
Former Secretary-General,
Rajya Sabha, Parliament of India,

A-1055, A-Block, Lekhraj Marg,
Indira Nagar, Lucknow-226016
Mobile: 9415012040/9140060117

दो शब्द

राम का नाम लेते ही मन श्रद्धा से भर जाता है। जैसा कि तुलसी दास जी ने लिखा– 'जाकी रही भावना जैसी', के अनुसार हर एक के मन में अलग–अलग भाव उठते हैं। यही कारण है कि वाल्मीकि का आदर्श सम्राट राम, जो अपने मर्यादापूर्ण व्यवहार से बना महामानव, आगे चल कर 'घट–घट वासी' बन गया। श्रुति, स्मृति वर्णित गुणों पर खरा उतरने के कारण वाल्मीकि ने जिसे महामानव के रूप में प्रस्तुत किया, उसकी लोकरंजक ख्याति कालांतर में प्रशंसा, श्रद्धा और अंत में भक्ति और पूजा में परिवर्तित होती गई।

यही कारण है कि वाल्मीकि रामायण का 'महामानव नायक' राम, कालिदास से लेकर दसवीं शताब्दी की 'कम्बन रामायण' में विष्णु के अवतार के रूप में अवतरित हुआ। कालांतर में तुलसी दास ने 'रामचरित मानस' में राम को त्रिदेवों द्वारा पूजित परब्रह्म रूप में प्रस्तुत किया।

व्यावहारिक दृष्टि से श्रद्धा और बौद्धिक तर्क एक दूसरे के विलोम हैं। राम के भक्त उनके हर महामानवीय कृत्यों को दैवी चमत्कार मान श्रद्धा से ग्रहण करता है; वहीं तर्क उनका संभाव्य के निकष पर परीक्षण करता है। श्रद्धा, राम को ईश्वर मानने को प्रेरित करती है; वहीं तर्क उन्हें महामानव से अधिक नहीं स्वीकारना चाहता। तर्क और श्रद्धा की ऊहापोह में तर्क का एक बिन्दु बहुत महत्त्वपूर्ण है–

'ईश्वर होने के कारण, 'श्रद्धा के राम' के कृत्यों में कुछ भी महानता नहीं रह जाती। उनके द्वारा प्रस्तुत आदर्श जनसाधारण को अमानवीय लगने लगते हैं और वह उनका अनुकरण करना असंभव मान बैठता है। वहीं तर्क के राम महामानव हैं। उनके द्वारा स्थापित आदर्श पर चलना साधारण मनुष्यों के लिए भी संभव है। तर्क की ऐसी भावना स्वयं मानव के लिए ही नहीं वरन् देश और दुनिया के लिए भी कल्याणकारी है।'

राम को मानव और उनके कृत्यों को मानवीय रूप में प्रस्तुत करने के साथ ही, वीरवर लक्ष्मण एवं साध्वी सीता के चरित्र को भी इस कथा में यथोचित महत्त्व दिया गया है। इस कथा के वक्ता ऋषि विश्वामित्र हैं और श्रोता मिथिला से उर्मिला के साथ आया सेवक दंपति है। यह कथाकार की मौलिक सोच और दृष्टि को अंकित करने वाला है। कथा की यह अभिनव प्रस्तुति, कथावस्तु को एक नूतन परिधान में प्रस्तुत करने का सुंदर प्रयास है।

बालापन से ही लक्ष्मण ने छाया की भाँति राम का अनुगमन किया। कठिन समय में जैसी कि कहावत है 'छाया भी साथ नहीं देती', के विपरीत राम की लक्ष्मण रूपी छाया और भी अधिक घनीभूत हो उठती है। लक्ष्मण का बाल–काण्ड का चुलबुला, क्रोधी व्यक्तित्व आयु के साथ अयोध्या–काण्ड, दंडक प्रवास में धीरे–धीरे गुरुतर होता गया। दंडक वन में लक्ष्मण मात्र छाया न होकर राम के कवच बन गए। जब–जब राम हताश हुए, चाहे वह तथाकथित नर लीला में ही हो, लक्ष्मण ने राम को सांत्वना दी, सहारा दिया। लक्ष्मण तब ही उग्र होते थे, जब कुछ भी राम के विपरीत होता था।

यही कारण है कि स्वयं राम ने उन्हें अपने अभिभावक के रूप में स्वीकार किया। वाल्मीकि रामायण के लंका काण्ड में जब शक्ति लगने से लक्ष्मण मूर्च्छित होते हैं तब शोकाकुल राम कहते हैं– ''छोटा भाई होते हुए भी लक्ष्मण ने सदैव पिता की भाँति मेरा संरक्षण किया।''

इस सुन्दर राम कथा में श्री राम के अलावा भक्त शिरोमणि वीरवर लक्ष्मण तथा साध्वी सीता के चरित्र को यथा संभव रेखांकित करने के प्रयास हैं।

इस तथ्य से सभी परिचित होंगे कि राम कथा का उत्तर काण्ड सोची समझी दुर्नीति के तहत क्षेपक है। जिसके कारण गंगा की भांति निर्मल राम–कथा में दोष व्याप्त हो गया। लोग राम पर विभिन्न आक्षेप भी लगाने लगे। मनीषी राम कथा मर्मज्ञों से मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि अपने प्रवचनों में इन क्षेपकों का निवारण करने का प्रयास करें ताकि जनमानस में उत्पन्न हुई दुर्भावनापूर्ण भ्रांतियों का उन्मूलन हो सके; पावन राम कथा निर्झणी फिर से प्रवाहित हो सके। राम कथा लेखन से जुड़े वाणी पुत्रों को रामायण के इस प्रक्षिप्त भाग की दूषण रहित प्रस्तुति का प्रयास करना होगा।

इस शुभ आशा से कि कृति में राम की 'लोकरंजक जननायक' की छवि वर्तमान के जननायकों को लोकरंजक कृत्यों की ओर प्रेरित कर सके। कथाकार की 'राम' पर पूर्ण श्रद्धा होते हुए राम को एक 'लोकरंजक महामानव' के रूप में प्रस्तुत करने के प्रयास में रत है।

इस पुस्तक की स्वीकार्यता पाठक और आलोचकों की दृष्टि से क्या होगी, यह निर्णय भविष्य में निहित है। मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक जनमानस में स्वीकार्य होगी और संस्कृति की स्थापना और जड़ों को देखने के लिए पाठकों और आलोचकों को भी प्रेरित करेगी। कथाकार डॉ. दुर्गा शंकर शुक्ला की इस रचना की भूरि–भूरि प्रशंसा और बधाई के साथ 'रामहि केवल प्रेम पियारा' के संदेश के साथ अनन्य शुभेच्छायें।

रमेश चंद्र त्रिपाठी

Email: rameshctripathi2003@gmail.com

पौष पूर्णिमा सं. 2076 / 21–01–2019

पुरोवाक्

यह अत्यंत हर्ष का विषय है कि डॉ. डी.एस. शुक्ला की नवीनतम् कृति 'श्यामल काया–गोरी छाया' साहित्य जगत को प्राप्त हो रही है।

भारत और विश्व के कोने–कोने में बसे कोटि–कोटि भारतीयों की राम पर बड़ी श्रद्धा है। वह राम को एक सर्वशक्तिमान अवतारी चरित्र मानते हैं। ऐसी मान्यता है कि राम ने 'धर्मरक्षणाय' पृथ्वी पर अवतार लेकर नर–लीला की और आसुरी शक्तियों का विनाश किया। राम को ईश्वर रूप प्रदान करने में गोस्वामी तुलसी दास जी का सबसे बड़ा योगदान रहा, जिन्होंने राम का परम्ब्रह्म परमेश्वर रूप स्थापित किया। इस तथ्य का संज्ञान डॉ. शुक्ल ने भी लिया है। उन्हीं के शब्दों में :–

''वाल्मीकि रामायण का महामानव राम, कालिदास और दसवीं शताब्दी की कंबन रामायण में विष्णु के अवतार के रूप में विख्यात हो चुका था। कालांतर में तुलसी ने 'रामचरित मानस' में राम को त्रिदेवों द्वारा पूजित परम्ब्रह्म के रूप में प्रस्तुत किया।''

इस परिवर्तन का कारण बताते हुए डॉ. शुक्ला ने लिखा है कि– 'राम की लोकरंजक ख्याति कालांतर में प्रशंसा, श्रद्धा और अंत में भक्ति और पूजा में परिवर्तित होती गई।'

इस प्रकार ईश्वरत्व प्राप्त होने से राम एक ऐतिहासिक व्यक्ति से कहीं अधिक एक श्रद्धास्पद मिथक बन गये। अधिसंख्य जनों के लिए जहाँ राम का स्वरूप श्रद्धा एवं विश्वास पर आधारित है, वहीं कुछ विद्वान उसे तर्क का विषय मानते हैं।

डॉ. शुक्ला ने श्रद्धा के राम और तर्क के राम का बहुत अच्छा

विश्लेषण करते हुए लिखा– ''व्यवहारिक दृष्टि से श्रद्धा और बौद्धिक तर्क एक दूसरे के विलोम हैं। राम के भक्त उनके हर महामानवीय कृत्यों को दैवी चमत्कार मान श्रद्धा से ग्रहण करते हैं; वहीं तर्क उन कृत्यों का संभाव्य के निकष पर परीक्षण करता है। श्रद्धा, राम को ईश्वर मानने को प्रेरित करती है; वहीं तर्क उन्हें महामानव से अधिक नहीं स्वीकारना चाहता। तर्क और श्रद्धा की ऊहापोह में तर्क का एक बिन्दु बहुत महत्त्वपूर्ण है– 'ईश्वर होने के कारण, 'श्रद्धा के राम' के कृत्यों में कुछ भी महानता नहीं रह जाती। उनके द्वारा प्रस्तुत आदर्श जनसाधारण को अमानवीय लगने लगते हैं और वह उनका अनुकरण करना असंभव मान बैठता है। वहीं तर्क के राम महामानव हैं। उनके द्वारा स्थापित आदर्श पर चलना साधारण मनुष्यों के लिए भी संभव है। तर्क की ऐसी भावना स्वयं मानव के लिए ही नहीं वरन् देश और दुनिया के लिए भी कल्याणकारी है।''

डॉ. शुक्ला ने अपने लेखन के नायक के रूप में 'तर्क के राम' को चुना और राम को महामानव मानते हुए उन्होंने राम को ऐतिहासिक पुरूष सिद्ध करने के लिए वाल्मीकि रामायण के कथानक पर अपनी कथा आधारित करते हुए, वाल्मीकि रामायण में वर्णित स्थलों, वनों, नदियों और नदियों के संगम को आधुनिक और वैदिक काल के मानचित्रों द्वारा प्रमाणित करने का श्रेयस्कर प्रयास किया है।

डॉ. शुक्ला वाल्मीकि की कथा को प्रामाणिक इतिहास मानते हुए विवेचनात्मक रीति से लिखा है– "मेरा विश्वास है कि वाल्मीकि रामायण के कथानक को यदि तर्क (लॉजिक) की छन्नी से छान कर उसमे से काव्यगत अतिशयोक्ति, अन्योक्ति आदि को छान कर अलग कर दें तो, पाठक राम कथा का विशुद्ध इतिहास **(इतिहास= इति+हा+आस=ऐसा+ही (निश्चयात्मक)+था)** देख सकेंगे।

रामकथा में इसी दृष्टिकोण को अपनाते हुए डॉ. शुक्ला ने इस कृति में, राम द्वारा बला–अतिबला विद्या प्राप्त करना, ताटका वध, गंगावतरण, अहल्या–उद्धार आदि चमत्कारी घटनाओं को तर्कसंगत रूप में प्रस्तुत किया है।

उदाहरण के रूप में, गंगावतरण को मात्र भगीरथ की भक्ति और तपस्या का फल न मान कर वह इसे एक 'उच्चकोटि इंजीनियरिंग तकनीक' के रूप में प्रस्तुत करते हैं। मेरे विचार में लेखक की, उस युग नहर बनाने की कल्पना अतार्किक नहीं लगती, क्योंकि पुरातात्विक उत्खनन में प्राचीन मोहनजोदड़ों में भी उच्च कोटि की जल–निकास व्यवस्था पाई गई है। रघुवंशियों के युग में भी नहर बनाने की कला से लोग अवश्य परिचित रहे होंगे। यह भी निर्विवाद सत्य है कि हिमयुग से अभी तक ध्रुव प्रदेशों और हिमालय की बर्फ के लगातार पिघलने से समुद्र जल का स्तर निरंतर बढ़ रहा है। गुजरात में द्वारका व इन्डोनेशिया में समुद्री जल के नीचे भवन और मंदिर प्राप्त हुए हैं, जो समुद्र के बढ़ते जल स्तर के कारण जल–मग्न हो चुके थे। आज भी संसार के तटीय क्षेत्र में स्थित नगरों में समुद्र के बढ़ते जलस्तर के बचाव में उपयुक्त कार्यवाही की जा रही है।

ऐसे में गंगावतरण से समुद्र के जलभराव की कथा तर्कसंगत प्रतीत होती है। लेखक नहीं मानता कि गंगावतरण का मात्र भगीरथ के एकमेव प्रयासों की उपलब्धि है। उनके अनुसार यह कार्य कई पीढ़ियों के सतत् प्रयास का फल था। गंगावतरण की महायोजना राजा सगर से लेकर उनके पुत्रों अंशुमान, दिलीप, और भगीरथ के महाप्रयत्न का परिणाम थी। भगीरथ के समय में यह योजना सम्पूर्ण होकर फलित हुई। अतः लेखक की दृष्टि में इस महाप्रयास का सारा श्रेय भगीरथ को प्राप्त हो गया।

डॉ. शुक्ला ने वाल्मीकि द्वारा राम के जन्म का समय ग्रहों के वर्णन से एक निश्चित तारीख प्राप्त होने का उल्लेख कर राम की ऐतिहासिकता सिद्ध करने का प्रयास किया है।

प्रस्तुत कथा राम की जल समाधि के बाद 'फ्लैशबैक' में चलती है। राम के जन्म के समय की ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि के विवरण के साथ यह कथा प्रारम्भ होती है। रावण की बढ़ती हुई शक्ति को शमित करने के लिए ऋषि विश्वामित्र को एक नायक की आवश्यकता होती है जो इन्हें दशरथ पुत्र राम के रूप में मिलता है। (यहाँ लेखक परवर्ती

चाणक्य–चन्द्रगुप्त के चरित्र से प्रभावित लगता है) विश्वामित्र द्वारा राम का महानायक के रूप में संस्कार से लेकर राम के वनगमन तक की ऐतिहासिक परिस्थितियों और घटनाओं को कथानक को प्रस्तुत खंड में अत्यंत प्रभावपूर्ण रीति से निरूपित किया गया है। प्रभावपूर्ण भाषा एवं शिल्पगत उत्कृष्टताओं के कारण यह कृति अत्यंत पठनीय बन गई है।

आशा है, इस कृति का राम कथा प्रेमियों के मध्य एवं साहित्य जगत में सम्यक स्वागत एवं समादर होगा।

इस अनुपम एवं अनुपमेय कृति की रचना के लिए लेखक को कोटिशः बधाइयाँ।

5 फरवरी, 2019
1/6 विशाल खंड, गोमती नगर,
लखनऊ– 226010

शंभुनाथ
(आई.ए.एस.)
पूर्व मुख्य सचिव, उ०प्र० शासन, एवं
पूर्व कार्यवाहक अध्यक्ष, उ०प्र० हिन्दी संस्थान

यह पुस्तक क्यों ?

राम थे अथवा नहीं? राम कथा एक भावुक कवि की कोरी कल्पना है ?

यह प्रश्न एकाएक भारतीय जनमानस में जाने कहाँ से पूछा जाने लगा। इसके पहले कभी राम के अस्तित्व पर प्रश्न नहीं लगा। लोग सुबह ''राम–राम'' कहते उठते, मिलते तो ''राम–राम'' कह जुहार करते, कष्ट में 'हाय राम' पुकारते, राम नाम की सौगंध उठाते और अंतिम प्रयाण में 'राम नाम सत्य है' के जैकारे के साथ चिता पर लेटाए जाते हैं। फिर एकाएक राम नाम पर संशय कैसे ? मेरा मन भी संस्कार जनित ऊहापोह से आंदोलित हो उठा। जैसे छोटे से कंकड़ के आघात से सरोवर में तरंगे उठने लगती है, वैसे ही मन में विचार उठे–

आइंस्टीन ने गांधी के बारे में कहा था, ''आज से 500 साल बाद लोग विश्वास नहीं करेंगे कि गांधी जैसा हाड़–माँस का कोई व्यक्ति इस धरा पर चला होगा।'' फिर राम तो हजारों वर्ष पहले हुए थे। अतः एक तटस्थ विचारक या साधारण जिज्ञासु के मन में भी दुविधा होना अस्वाभाविक नहीं है। किन्तु संस्कारों को नकारने को आधुनिकता समझने वाले दुराग्रही विचारकों द्वारा राम को मात्र मिथक अथवा कवि की कोरी कल्पना सिद्ध करने का प्रयास मन–मानस को उद्वेलित करता है। लगता है कि प्राचीन संस्कृति को जड़ से समाप्त करने का षड़यंत्र चल रहा है।

भारतीय संविधान की मूल प्रति में महाभारत, गीता और रामायण के चित्र भारत की सांस्कृतिक धरोहर के रूप में अंकित हैं। फिर भी जब भारत की तथाकथित धर्मनिरपेक्ष सरकार राम के अस्तित्व को नकार राम–सेतु को नष्ट करने का शपथ–पत्र देने लगे; तो प्रतीत

होता है कि उनका भारत की अस्मिता एवं संविधान पर भी विश्वास नहीं रहा।

ऐसी विचारधारा मात्र भारत में ही संभव है। अन्य देश अथवा धर्मों में नहीं।

आदिकवि वाल्मीकि की 'रामायण' मानव रचित साहित्य की सर्वप्रथम रचना है। वाल्मीकि राम के समकालीन थे। सीता के जीवन का एक बड़ा भाग वाल्मीकि आश्रम में ही बीता। राम के दोनों पुत्र कुश और लव इस कथा के प्रथम वाचक एवं गायक थे। अतः वाल्मीकि रचित रामायण राम कथा की सबसे विश्वसनीय कृति है। इसी कारण हम भारतीय इसे इतिहास ही मानते हैं। वाल्मीकि रामायण के नायक राम अवतारी अथवा देव पुरुष नहीं हैं। वाल्मीकि ने उन्हें एक आदर्श शासक और आदर्श पुरुष के रूप में प्रस्तुत किया जो अपने सुकृत्यों से महामानव बन कर निखरा।

वाल्मीकि ने अन्य कवियों की भाँति केवल राम कथा ही नहीं कही। उन्होंने अयोध्या, सिद्धाश्रम, विशाला, मिथिला आदि स्थानों का व सरयू, गंगा, शोण आदि नदियों के संगम का जो विवरण दिया है वह आज भी यथावत विद्यमान है। रामायण में आदिकवि ने राम के विचरण स्थानों के मार्ग और भौगोलिक संरचनाओं को भी बताया है, जिन्हें प्राचीन मानचित्रों के अलावा आधुनिक मानचित्रों से परिपुष्ट भी किया जा सकता है। परिशिष्ट में दिये मानचित्र दृष्टव्य हैं।

यही नहीं राम कथा की प्रमुख घटनाओं का वर्णन करते समय वाल्मीकि ने आकाशीय ग्रहों की स्थिति का भी वर्णन किया है, जिन्हें कि आधुनिक विज्ञान की सहायता से परखा जा सकता है।

सर्वमान्य तथ्य है कि खगोलीय पिण्ड एक समय में एक निश्चित स्थान पर ही स्थित होते हैं। ग्रहों की एक स्थिति विशेष की पुनरावृत्ति की संभावना करोड़ों वर्ष तक नहीं हो सकती। अतः ग्रहों की स्थिति से उसके (ग्रेगेरियन कैलेंडर के अनुसार) समय का अंदाज़ा लगाया जा सकता है।

अमेरिका की नासा प्रयोगशाला में 'प्लेनेटेरियम साफ्टवेयर' विकसित किया गया है जिसके द्वारा किसी भी दिन की खगोलीय पिंडों की स्थिति बताई जा सकती है और ग्रहों की खगोलीय स्थिति से उसका 'ग्रेगेरियन कलेंडर' के अनुसार समय एवं दिनांक ज्ञात किया जा सकता है।

इस सॉफ्टवेयर में जब वाल्मीकि रामायण में वर्णित ग्रहों की स्थिति डाली गई तो निष्कर्ष निकला–

राम का जन्म 10 जनवरी, 5114 BCE में अपराह्न 12:30 पर हुआ। हिन्दू कैलेंडर के अनुसार वह चैत्र माह की नवमी में पुनर्वसु नक्षत्र हुआ।

भरत का जन्म 11 जनवरी 5114 को प्रातः 5:30 पर हुआ।

राम वनवास के समय राम की आयु 25 वर्ष आँकी गई।

वास्तविकता है कि जिन स्थलों का वर्णन वाल्मीकि रामायण में आज से हजारों साल पहले किया जा चुका है वह स्थल हिमालय से दक्षिण सागर तक आज भी विद्यमान हैं। सागर पार लंका में भी राम रावण कथा से जुड़े स्थल हैं और वहाँ की सरकार द्वारा ये पर्यटक स्थल घोषित हैं।

'तथाकथित ज्ञानी' लोगों का कुतर्क हो सकता है कि गंगा किनारे निवसित वाल्मीकि को वहीं बैठे–बैठे, इन सुदूर स्थलों और वहाँ घटित घटनाओं का ज्ञान कैसे हुआ ?

पूरी संभावना है कि लंका विजय के बाद राम के साथ आए उनके वनवास के सहयोगियों द्वारा जनसाधारण को ज्ञात हुआ होगा। राम के राजतिलक में आए ऋषि मुनियों में महर्षि अगस्त्य भी थे। अगस्त्य का राम की विजय में बहुत योगदान था। 'रघुवंश' के अनुसार ऋषि अगस्त्य ने राज दरबार में राम के संघर्ष एवं दुष्ट–दलन के बारे में विस्तार से बताया।

गर्भवती साध्वी सीता लव–कुश के जन्म के बाद कुमारों के

किशोर होने तक वाल्मीकि आश्रम में रही थीं। निश्चित है कि सीता ने अपने प्रवास के दौरान वाल्मीकि को सारी कथा विस्तार से बताई होगी। पूरी संभावना है कि क्रौंच पक्षी की मृत्यु से आहत कवि ने सीता की पीड़ा से द्रवित होकर रामायण की रचना कर बैठा।

अन्य साक्ष्य–

अंग्रेजों के भारत आने के 500 वर्ष पूर्व अलबरूनी ने सन् 1336 ईस्वी में अपनी पुस्तक 'किताब–उल–हिन्द' में राजा दशरथ के पुत्र राम का ज़िक्र किया जिसने दक्षिण में 'सेतुबंध' बनवाया।

हमीदा बानो (सम्राट हुमायूँ की पत्नी तथा राजा अकबर की माँ) द्वारा बनवाए गये राम कथा के तैल चित्र वर्तमान में ज्यूरीच के संग्रहालय में संग्रहीत हैं। सम्राट अकबर द्वारा बनवाए गए राम कथा–चित्र सवाई मान सिंह संग्रहालय में आज भी देखे जा सकते हैं।

जिस राम का होना भारत में नकारा जा रहा है उस राम के लंका विजय के बाद विमान से वापस लौटने का उल्लेख 'ओल्ड टेस्टामेंट' की 'बेनहर' (BEN-HUR : A TALE OF CHRIST Page 318-321) नाम की कथा में भी आया है।

प्राचीन मिस्र के फैरो अपने को सूर्यवंशी मानते थे। उनका एक फैरो इतिहास में 'राम्से' नाम से प्रसिद्ध है।

इन्डोनेशिया एक मुस्लिम बाहुल्य देश होते हुए भी वहाँ राम की बहुत मान्यता है। थाईलैंड के 'चक्री वंश' के राजा सदियों से अपने टाइटिल 'राम' रखते हैं। वहाँ के वर्तमान राजा आज भी राम ixth (9वें) नाम से प्रसिद्ध हैं।

अयोध्या के उत्तर पूर्व मिथिला से लेकर उत्तर प्रदेश, छत्तीस गढ़, झारखंड, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक एवं तमिलनाडु से आगे लंका तक राम कथा में वर्णित स्थल आज भी सरकारों द्वारा पर्यटक केंद्र के रूप में विकसित हैं।

कुमारसम्भव में जैसे हिमालय को पूर्वी समुद्र से पश्चिमी समुद्र

को मापने का मापदंड बताया गया है, उसी प्रकार हिमालय से लेकर दक्षिण सागर पार दूरदेश श्री लंका तक राम गाथा के प्रमाण आज भी अंकित हैं।

ऐसे में मेरा विश्वास है कि वाल्मीकि रामायण के कथानक को यदि तर्क (लॉजिक) की छन्नी लगा कर उसमे से काव्यगत अतिशयोक्ति, अन्योक्ति आदि को छान कर अलग कर दें तो, राम कथा का विशुद्ध इतिहास **(इतिहास=इति+हा+आस= ऐसा+ही (निश्चयात्मक)+था)** देख सकेंगे।

इन तथ्यों से यदि पाठक किंचिन्मात्र भी सहमत हों तो एक और राम कथा लिखने का यह प्रयास सफल माना जाएगा। क्योंकि किसी भी रचना का वास्तविक और अंतिम मूल्यांकनकर्ता पाठक ही होता है।

इस कथानक की सीता आँसू नहीं बहाती। वह एक दृढ़ चरित्र आत्मविश्वासी नायिका है जो राम के संघर्ष, दुष्टदलन अभियान में बराबर की भागीदार एवं संगिनी हैं। सीता ऐसे सशक्त नारी पात्र साहित्य में कम हैं। राम एक मिथक न होकर विशुद्ध ऐतिहासिक हैं। राम और लक्ष्मण को इस रचना में उच्च कोटि का मानव माना है। उनमें किसी प्रकार का देवत्व अथवा ईश्वरीय चमत्कार नहीं है।

'श्यामल काया गोरी छाया' के राम केवल 'राम' हैं।

डॉ० डी०एस० शुक्ला
18/378, इन्दिरा नगर,
लखनऊ– 226 016
मो0 :– 9415469561

पात्र परिचय

रावण का कुल :–

रावण– ऋषि पुलस्त्य का पौत्र, विश्रवा तथा पुष्पोत्कटा (केकसी) का पुत्र।

कुंभकर्ण– रावण तथा कुंभिनसी का भाई, विश्रवा तथा पुष्पोत्कटा (केकसी) का पुत्र।

कुंभिनसी– रावण तथा कुंभकर्ण की बहन, विश्रवा तथा पुष्पोत्कटा (केकसी) की पुत्री।

विश्रवा– ऋषि पुलत्स्य का पुत्र, पुष्पोत्कटा, मालिनी और राका का पति

विभीषण– विश्रवा तथा राका का पुत्र, राम का भक्त।

पुष्पोत्कटा (केकसी)– विश्रवा की पत्नी, रावण, कुंभकर्ण तथा कुंभिनसी की माता।

राका– विश्रवा की पत्नी, विभीषण की माता।

मालिनी– विश्रवा की तीसरी पत्नी, खर–दूषण, त्रिशिरा तथा शूर्पणखा की माता।

त्रिशिरा– विश्रवा तथा मालिनी का पुत्र, खर–दूषण का भाई एवं सेनापति।

शूर्पणखा– विश्रवा तथा मालिनी की पुत्री, खर–दूषण एवं त्रिशिरा की बहन, विंध्य क्षेत्र में निवास।

मंदोदरी– रावण की पत्नी, तारा की बहन, पंचकन्याओं में स्थान।

कुबेर– ऋषि विश्रवा एवं भरद्वाज पुत्री इड़वीड़ा का पुत्र, रावण का सौतेला बड़ा भाई, रावण के पहले लंका का कुबेर ही स्वामी था। ऋषि कुल के माता, पिता की संतान होने के कारण देवताओं का सहयोगी।

राम का वंश–सूर्यवंशी, इक्ष्वाकु और रघुवंश नाम से जाना जाता है।

1. इक्ष्वाकु – ये परम प्रतापी राजा थे, इनसे इस वंश का एक नाम इक्ष्वाकु वंश हुआ।
2. कुक्षि
3. विकुक्षि
4. पुरंजय
5. अनरण्य प्रथम
6. पृथु
7. विश्वरन्धि
8. चंद्र
9. युवनाश्व
10. वृहदश्व
11. धुन्धमार
12. दृढाश्व
13. हर्यश्व
14. निकुम्भ
15. वर्हणाश्व
16. कृशाष्व
17. सेनजित
    त्रेतायुग आरम्भ होता है।
18. युवनाश्व द्वितीय
19. मान्धाता
20. पुरुकुत्स
21. त्रसदस्यु
22. अनरण्य
23. हर्यश्व
24. अरुण
25. निबंधन
26. सत्यवृत (त्रिशंकु)
27. सत्यवादी हरिश्चंद्र
28. रोहिताश्व
29. चम्प
30. वसुदेव
31. विजय
32. भसक
33. वृक
34. बाहुक
35. सगर
36. असमंज
37. अंशुमान्
38. दिलीप प्रथम
39. भगीरथ– जो गंगा को धरती पर लाये।
40. श्रुत
41. नाभ
43. अयुतायुष
44. ऋतुपर्ण
45. सर्वकाम
46. सुदास
47. सौदास
48. अश्मक
49. मूलक
50. सतरथ
51. एडविड
52. विश्वसह
53. खटवाँग
54. दिलीप (दीर्घवाहु)
55. रघु – ये सूर्यवंश के सबसे प्रतापी राजा हैं।
56. अज
57. दशरथ
58. राम (लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न)
59. कुश

दशरथ–राजा अज के पराक्रमी पुत्र। देवासुर संग्राम में यह देवताओं की ओर से असुरों के विरुद्ध युद्ध में भाग लेते थे। इन्हें वृद्धावस्था में राम, लक्ष्मण, भरत शत्रुघ्न चार पुत्र हुए। इनकी तीन रानियाँ–

कौसल्या– राम की माँ, कौशल प्रदेश की राजकुमारी। पिता सुकौशल ने दशरथ के विजय अभियान में पराजित होकर अपनी पुत्री कौसल्या का विवाह दशरथ से कर दिया। कौसल्या दशरथ की प्रथम पत्नी होने से अयोध्या की पट्टमहिषी बनीं। पौराणिक कथानक में इन्हें सतरूपा का पुनर्जन्म माना जाता है।

कैकेयी– राम कथा के सबसे सशक्त पात्रों में एक। प्रारम्भ से महत्वाकांक्षी, कूटनीति में निपुण। कैकय प्रदेश से आई सेविका मंथरा की कुटिल मंत्रणा की वजह से अयोध्या में राम कथा की प्रतिनायिका (खलनायिका)। राम को 'राम' बनाने में रावण के बाद प्रमुख योगदान।

सुमित्रा– राजा दशरथ की तृतीय भार्या। अतीव सुंदरी, लक्ष्मण–शत्रुघ्न की माँ, कौसल्या के निकट और उनकी स्नेहपात्र। किन्तु राम कथा की उपेक्षित मूक पात्र। कुछ ग्रन्थों में इन्हे सिहँल देश की राजकुमारी बताया और सशक्त क्षत्राणी के रूप में चित्रित किया गया।

वशिष्ठ– प्रसिद्ध सप्त–ऋषियों में एक ब्रह्मज्ञानी ऋषि, दशरथ और राम के कुलगुरु। लोक–कथा है कि सुख सुविधाओं में पले बढ़े राम जब किशोरावस्था में महल से प्रजा परिचय के लिए जन साधारण के मध्य गए तो प्रजा के कष्ट देखकर विषादग्रस्त हो गए। उस समय वशिष्ठ ने राम को प्रारब्ध, जीवन में सुख–दुःख चक्र, कर्म और समत्व तथा राज धर्म का उपदेश दिया। यह शिक्षा संस्कृत वाङ्मय में 'योग–वाशिष्ठ' के रूप में जाना जाता है, पत्नी– देवी अरुंधती।

विश्वामित्र– इस कथा के सूत्रधार! विश्वामित्र का जीवन सिद्ध करता है कि वर्ण व्यवस्था जन्म आधारित न होकर कर्म आधारित है। गाधि पुत्र विश्वरथ हुए जो आगे चल कर विश्वामित्र कहलाए। कुश वंश में जन्म लेने के कारण इन्हें कौशिक भी कहते हैं। प्रतापी विश्वरथ ने अगस्त्य के आह्वान पर दुर्गम विन्ध्याचल के दक्षिण में सैनिक प्रयाण

कर, अत्याचारी शंबर का वध किया और उसकी पुत्री शांबरी से विवाह भी किया। विश्वरथ ने वशिष्ठ ऋषि के ब्रह्म तेज से प्रभावित होकर ब्राह्मणत्व प्राप्ति हेतु ब्रह्म विद्या का गहन अध्ययन व तपस्या की। अंततः क्षात्र–रजोगुणी–क्रोध पर विजय प्राप्त कर ब्राह्मणत्व प्राप्त कर पूर्ण ब्राह्मण विश्वामित्र कहलाए।

सिद्धाश्रम के आततायी मारीच, सुबाहु का प्रतिकार करने में विश्वामित्र स्वयं समर्थ थे। किन्तु क्रोध का पूर्ण परित्याग करने की वजह से इन्होंने अत्याचारियों के विरुद्ध स्वयं शस्त्र नहीं उठाया। इस प्रयोजन हेतु विश्वामित्र ने सूर्यवंशी राम–लक्ष्मण को प्रशिक्षित करके उन अत्याचारियों का दमन कराया। विश्वामित्र के निर्देशन में ही राम ने समस्त भरतखंड को अत्याचारियों से निर्मूल कर सुप्रसिद्ध 'राम–राज्य' की स्थापना की।

गौरी– मिथिला की एक सेविका जो उर्मिला के विवाह में उर्मिला के साथ आई थी। कालांतर उसने मिथिला से ही आए सेवक कौस्तुभ से विवाह किया। गौरी अयोध्या वासियों के क्रोध से विश्वामित्र की रक्षा करती है।

कौस्तुभ– कौस्तुभ भी गौरी की भाँति उर्मिला की सेवा हेतु मिथिला से आया और गौरी के साथ गृहस्थी बसाई। यह सत्य है कि राम को 'राम' बनाने में विश्वामित्र का बहुत योगदान था। अतः गौरी और कौस्तुभ ने विश्वामित्र से राम कथा सुनाने आग्रह किया। इस युगल की सेवाओं से अभिभूत विश्वामित्र 'लोक–रंजक राम' की कथा सुनाते हैं–

प्रस्तुत कथा गौरी और कौस्तुभ ने सुनी।

सुमंत्र– दशरथ के सचिव। दशरथ का इनसे साख्य भाव था।

------x------x------x------

पुराकथन

जलसमाधि

सीता निर्वासन के बाद से राम बाह्य रूप से शांत एवं स्थिर लगते थे, परंतु अंदर ही अंदर व्यथित रहने लगे थे। उनके मन में निरंतर एक प्रश्न घुमड़ा करता–'आखिर सीता का क्या दोष था? यह अपराध बोध राम को निरंतर सालता रहता।

आत्मावलोकन के क्षणों में उन्हें याद आया कि सीता वन की कठिनाइयों और सम्भावित संकट से भली–भांति परिचित थी। फिर भी वह राम के साथ वनगमन को प्रस्तुत हुई। क्योंकि सीता जानती थी कि राम के लोककल्याण के लक्ष्य की वह एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। इसी कारण उसने मेरे हेतु सहर्ष राज सुख त्याग वनगमन का मार्ग चुना। विवाह के कुछ वर्षों तक ब्रह्मचर्य पालन के उपरान्त, वयस्क होने पर दाम्पत्य जीवन प्रारम्भ होने का समय आया। तभी चौदह वर्षों की वनवास की स्थिति उत्पन्न हो गई। दोनों को वनवास की अवधि भर फिर से ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना पड़ा। वनवास के पहले तेरह वर्षों में सीता ने साथ रहकर राम के कन्धें से कन्धा मिलाकर, हर प्रयोग, हर अभियान में साझेदारी की।

सीता हरण के पश्चात रावण पर विजय हेतु राम को वीर वानरों, भालुओं के भारी सैन्य बल के अलावा वीरवर लक्ष्मण का कवच उपलब्ध था। वहीं सीता लंका में अकेले प्रलोभनों और अत्याचारों के बावजूद रावण से अविजित रही। सीता ने अपनी बुद्धि से लंका में रावण विरोध में एक बहुत बड़ा पक्ष तैयार कर लिया। उसने सरमा और त्रिजटा के माध्यम से भीरु विभीषण के मन में लंकेश बनने की अभिलाषा जाग्रत कर दी। सीता की मंत्रणा के चलते ही हनुमान जब सीता को खोजते

हुए लंका पहुँचे तब उन्हें विभीषण के आवास में शरण मिली। लंका में दिनभर हनुमान विभीषण के आवास पर गुप्त रूप से रहे। पूर्वनियोजित युक्ति के अनुसार हनुमान जब संध्या को अशोक वाटिका पहुँचे, तब त्रिजटा मुख्य प्रहरी के रूप में उपस्थित थी। राक्षसियों को काल्पनिक भय दिखा कर त्रिजटा ने सभी को वापस घर भेज दिया। यही नहीं उसने स्वयं भी वहाँ से प्रस्थान किया ताकि हनुमान सीता से गुप्त मंत्रणा कर सकें।

एक सोची समझी रणनीति के चलते अवसर आने पर रावण के दरबार में पहुँच कर विभीषण ने हनुमान वध को उद्यत रावण को विरत किया।

आह...सीता के गुणों की चर्चा के लिए राम को एक और जन्म लेना पड़ेगा।

वहीं राम ने ऐसी सीता को निर्वासित किया...! वह भी मात्र एक वंचक के कहने पर।

राम की सीता–स्मृति–शृंखला लक्ष्मण के आगमन से टूटी।

"महर्षि विश्वामित्र पधारे हैं। गुरुवर आपसे एकांत वार्ता चाहते हैं", लक्ष्मण ने निवेदन किया।

गुरु विश्वामित्र और इस समय? कोशल, मिथिला, किष्किंधा, दंडक क्षेत्र यहाँ तक कि लंका आदि सभी जगह शांति थी, सुशासन था। राम–राज्य का डंका बज रहा था। विश्वामित्र का लोकरंजन और वैदिक संस्कृति प्रसार का स्वप्न पूर्ण हो चुका था। ऐसे में विश्वामित्र का पुनरागमन...क्यों?

राम ने शीघ्रता से चलकर गुरु का स्वागत, अर्चना की। इस शिष्टाचार के बाद राम विश्वामित्र को अपने निजी एकांत कक्ष में ले गए।

परंतु यह क्या ? वार्ता प्रारम्भ होने के पहले विश्वामित्र ने राघव के सामने एक अजीब शर्त रख दी। वह बोले "राम, मेरी और तुम्हारी

यह वार्ता अत्यंत गोपनीय है। इसका एक भी शब्द किसी तीसरे के कानों में नहीं पड़ना चाहिए। यदि किसी ने धोखे से भी यह वार्ता सुन ली या वार्ता में व्यवधान डाला तो उसे मृत्यु–दंड मिले।"

"जो आज्ञा गुरुदेव !" राम ने हमेशा की तरह गुरु का यह आदेश भी शिरोधार्य किया।

राम स्वयं विश्वामित्र के साथ वार्ता कक्ष में गए, और बाहर प्रहरी के रूप में अपनी छाया लक्ष्मण को छोड़ गए। लक्ष्मण को अपने दायित्व का भान था– किसी भी हालत में कोई भी तीसरा व्यक्ति कक्ष में प्रवेश न करे, वरना वह मृत्यु दंड का भागी होगा।

"राम! तुम्हारे कृत्यों ने तुम्हें जनमानस में देवत्व का स्थान प्राप्त करा दिया है। अब उनके लिए तुम साधारण मानव नहीं रह गए। परंतु, जनसाधारण के मन की ऐसी धारणायें उन्हें स्वस्थ परंपरा से दूर ले जाती हैं। तुम्हारे कृत्यों को दैवी चमत्कार मान वह उन पर चलने की प्रेरणा नहीं ले पाएंगे; क्योंकि तुम्हारे कृत्य उन्हें अपौरुषेय लगेंगे।"

राम पूरी तरह से गुरु वचनो को स्वाति–बूँदों सा ग्रहण कर रहे थे।

विश्वामित्र ने बगैर किसी भूमिका के कहा, "अब तुम चौथेपन में प्रवेश कर चुके हो। काल की गति से तुम भी नहीं बच सकोगे राम! परंतु वेदोक्त वानप्रस्थ तुम्हारे लिए असम्भव है।"

"क्यों गुरुदेव?"

"वन में भी तुम लोगों से घिरे रहोगे। इस बार वानप्रस्थ हेतु तुम्हारे वनगमन पर सारी अयोध्या तुम्हारे साथ वन में निवास करने लगेगी। इसलिए तुम्हें अपने लिए कुछ अन्यथा विचार करना होगा। आदर्श 'राम–राज्य' की स्थापना हो चुकी है। धरा पर तुम्हारा उद्देश्य अब समाप्त हो चुका है!"

"मुझे अब प्रयाण करना चाहिए?" राम ने निर्विकार भाव से पूछा।

"हाँ, वत्स राम। हर प्राणी एक उद्देश्य के साथ संसार में आता है। उस उद्देश्य के पूरा करने के बाद उसे चल देना चाहिए; वरना वह अप्रासंगिक होने लगता है। अपने पीछे तुम मर्यादा की लीक छोड़ जाओगे जो भविष्य में लोगों का मार्गदर्शन करेगी।"

"इसे किस प्रकार सम्पन्न किया जाय, यह भी बता दें गुरुदेव. .." राम का वाक्य अधूरा ही रह गया। द्वार पर कुछ हलचल सुनाई दी। राम व्यग्रता से द्वार की ओर देखने लगे। विश्वामित्र की दृष्टि राम के चेहरे के भाव पढ़ रही थी।

द्वार खुला...आगंतुक लक्ष्मण थे! राम में आश्चर्य मिश्रित दुःख के चिह्न उभरे।

लक्ष्मण ने निवेदन किया, "महाराज, ऋषिश्रेष्ठ दुर्वासा पधारे हैं और आपसे तुरंत मिलना चाहते हैं। रुकना वह जानते नहीं, अवहेलना उन्हें सह्य नहीं। इसीलिए, क्षमा करिएगा कि आपके आदेश के बाद भी मुझे कक्ष में आना पड़ा।"

राम व्यग्र हो उठे। राम को दुर्वासा की क्रोधाग्नि से बचाने हेतु लक्ष्मण को प्राणदंड भी स्वीकार है...!

राम तत्परता से दुर्वासा का स्वागत करने चल पड़े। राम ने दुर्वासा की अभ्यर्थना की। दुर्वासा ने स्वस्ति मुद्रा में हाथ उठाया तभी विश्वामित्र कक्ष से बाहर पधारे और प्रणाम कर दुर्वासा का स्वागत किया "अयोध्यापति के निजी कक्ष में स्वागत है, मुनिवर!"

दुर्वासा, विश्वामित्र को राम के साथ देख कर हतप्रभ हो गए "विश्वामित्र, तुम यहाँ कैसे? जब मैं सिद्धाश्रम से चला था तब तुमने ही मुझे विदा किया था। तुम मुझसे पहले किस प्रकार और किस प्रयोजन से, इतनी तीव्र गति से अयोध्या आ पहुँचे?"

राम ने आश्चर्य से विश्वामित्र को देखा... क्या गुरुदेव मेरे प्रयाण का ही मार्ग प्रशस्त करने आए थे!

कौशिक शांत भाव से मुस्करा रहे थे।

छाया को प्राण-दंड

दोनों महामुनियों के प्रस्थान के बाद अपने को व्यवस्थित करने में राम को कुछ समय लगा। व्यवस्थित होते ही उन्हें सबसे पहले लक्ष्मण का ध्यान आया। लक्ष्मण उनका छोटा भाई। जिसे लोग राम की प्रति–छाया कहते हैं। छोटा होते हुए भी जिसने पिता के समान सदैव उनकी रक्षा की। हर विघ्न में उनके साथ ही नहीं वरन उनकी सुरक्षा हित एक कदम आगे आकर ढाल बना। विश्व के सभी रिश्ते–नाते सारी खुशियाँ राम से ही प्रारम्भ होती और राम पर ही समाप्त होती।

राम–भक्ति में अग्रगण्य, रामानुज लक्ष्मण।

राम तुरंत लक्ष्मण के कक्ष की ओर चल पड़े। पर यह क्या! उर्मिला लक्ष्मण से लिपट कर रो रही है। लक्ष्मण की पीठ द्वार की ओर थी। उर्मिला ने आँसू भरे नेत्रों से राम को पहचाना। वह तुरंत लक्ष्मण को छोड़ नमित शिर, नमित नयन राम को प्रणाम करती दो पग पीछे हटी, परंतु अश्रु धारा यथावत।

"क्या हुआ उर्मिला, कुशल तो है? तुम विह्वल क्यों हो?"

उर्मिला के कंठ से कोई शब्द नहीं निकला। वह यथावत् हाथ जोड़े सिर झुकाये खड़ी रही। तब वीतरागी वस्त्रों में लक्ष्मण राम की ओर मुड़े। लक्ष्मण के चेहरे पर विषादपूर्ण शांति थी। उन्होंने राम को प्रणाम किया।

"यह क्या लक्ष्मण तुम वीतरागी वस्त्रों में कैसे?"

"उर्मिला से मिल कर मैं आपके के पास दंड पाने के लिए ही उपस्थित होने आ रहा था।"

"दंड...कैसा दंड लक्ष्मण! तुम तो कभी स्वप्न में भी अनुचित कर ही नहीं सकते। राम में कर्म–दोष सम्भव है, परंतु लक्ष्मण में कभी नहीं। तुमने ऐसा क्या अपराध कर दिया बंधु?" राम के स्वर में व्यग्रता थी।

उर्मिला की सिसकियाँ तेज हो उठीं।

"ऋषि विश्वामित्र से वार्ता व्यवधान उत्पन्न करने का अपराध" लक्ष्मण ने याद दिलाया।

राम सन्न रह गए। दो महान् ऋषियों की अभ्यर्थना और विश्वामित्र से स्वयं अपने प्रयाण की वार्ता में राम अपने ही द्वारा दिये विधान को भूल ही गये। लक्ष्मण को प्राण दंड...! वह लक्ष्मण जिसने अपना सारा जीवन, समस्त सुख केवल राम की सुविधा के लिए होम कर दिये, दो बार सांघातिनी शक्ति के प्रहार को झेला। ऐसे लक्ष्मण को प्राण–दंड?

"नहीं ऐसा नहीं हो सकता।"

लक्ष्मण ने नम्र किन्तु निश्चित स्वर में कहा, "रघुकुल में वचन का विधान अक्षुण्ण रखने की परम्परा है। स्वयं आपने राज–पाठ, सुख, वैभव सब कुछ मात्र पिता की वचन रक्षा के लिए त्याग दिया था। लक्ष्मण राम का अनुगामी है। उसे राम के पदचिह्नों पर चलने से विरत न करे देव।"

"तब परिस्थितियाँ भिन्न थीं। वह त्याग जनता को अत्याचारों से बचाने हेतु था, लोक हित में था।"

"रामराज्य में राम के वचन का अनुपालन करने में भी लोकहित और लोकरंजन है, प्रभु।"

राम कुछ देर चुप रहे।

"लक्ष्मण! राम, तुम्हें प्राणदंड नहीं दे सकता", फिर भर्राये स्वर में बोले, "आज से राम, लक्ष्मण का...लक्ष्मण का त्याग करता है। किसी का त्याग भी प्राण–दंड के समतुल्य होता है; पर हे लक्ष्मण! तुम राम के निमित्त जीवित अवश्य रहो।" अति भावुकता से उनका स्वर रुद्ध हो गया। वह शीघ्रता से कक्ष के बाहर चले गए।

कक्ष में जैसे वज्रपात हुआ। उर्मिला के आँसू सूख गए, वह आतंकित होकर कभी लक्ष्मण और कभी दूर जाते राम की पीठ को देख रही थी। लक्ष्मण का चेहरा सफेद हो गया। वह भी राम को पीछे से ही प्रणाम कर कक्ष से बाहर चले गए।

"लक्ष्मण ने सरयू में समाधि ले ली!"

"हाँ!"

सम्पूर्ण अयोध्या में हाहाकार मच गया।

राम अपने कक्ष में गहन चिंता में लीन थे। लक्ष्मण के त्याग ने उन्हें आक्रांत कर दिया था। एकाएक वे बोले, "कहीं छाया का भी त्याग किया जा सकता है? छाया के प्रयाण पर काया को भी जाना होगा।" राम उठे और सरयू के उसी घाट की ओर चल पड़े जहाँ लक्ष्मण ने समाधि ली थी।

अयोध्या के राजमहल में विद्युत गति से यह फैल गया कि लक्ष्मण की जलसमाधि से व्यग्र राम, कुश को अयोध्या सौंप लक्ष्मण के वियोग में जलसमाधि लेने जा रहे हैं। उनके पीछे–पीछे सुना है भरत और शत्रुघ्न भी चल पड़े। उन दोनों भाइयों ने भी महाप्रयाण में राम का अनुगामी होना निश्चय कर लिया।

----------x------x------x----------

राम ने धीरे–धीरे सरयू के जल में प्रवेश किया। अस्ताचलगामी सूर्य की स्वर्णरश्मियाँ सरयू जल में बिखर रही थीं। राम को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे स्वर्णिम रश्मियाँ जल–राशि में हौले से सीता की स्वर्ण प्रतिमा और फिर स्वयं सीता के रूप में परिवर्तित हो गईं। सीता, जो राम के सम्मुख सदैव उत्फुल्ल मुद्रा में आती थी, आज उसके चेहरे पर विषाद फैला था। राम को लगा पुत्रवत् लक्ष्मण के प्रयाण से वह भी दुःखी है। राम चुपचाप सीता की छवि निहारते रहे। सीता का विषाद राम की पीड़ा को द्विगुणित कर रहा था।

तभी एक लहर ने सीता का प्रतिबिंब मिटा दिया। जल पर निर्मित चित्र भंगुर ही होंगे। परंतु अगली लहर में सरयू जल पर आकाश के धवल जलधर का स्वच्छ बड़ा सा बिम्ब दिखा। इस धवल जलधर के बीच इस बार उन्हें लक्ष्मण का भास हुआ। लक्ष्मण की मुद्रा प्रसन्न थी, मानो रामकाज कर स्वयं को धन्य मान रहे हों। राम लक्ष्मण का यह रूप देख कर स्तब्ध रह गए। फिर एकाएक रामानुज राम को प्रणाम कर ओझल हो गए।

राम उन्हें पकड़ने के प्रयास में आगे बढ़े और सरयू के अथाह जल में लीन हो गए।

सूर्य अस्त हो चुका था। अब न राम, न सीता और न ही रामानुज लक्ष्मण रह गए। अंधकार में काला हुआ सरयू जल अनवरत प्रवाहित था।

----------x------x------x----------

लक्ष्मण की जल समाधि की हलचल अभी अयोध्यावासियों को मथ रही थी कि सूचना मिली कि लक्ष्मण के वियोग से आहत राम भी राजपाट कुश को सौंप कर जल समाधि के लिए प्रस्तुत हैं। राम के अनुगमन हेतु भरत और शत्रुघ्न भी तैयार हैं।

"राम के बिना उनके भाई ही क्या, हम अयोध्यावासी भी जीना नहीं चाहते। राम–राज्य में राम ने हम सब के साथ अपने सुख बाँटे। राम की प्रजा में कोई भी राम के वियोग में जीवित नहीं रहना चाहेगा। राम के साथ ही हम सब भी गोलोक गमन करेंगे।"

प्रारम्भ में तो राम के स्वर्गारोहण के अनुगामी एक दो ही आवाजें थी किन्तु समय के साथ उनकी संख्या बढ़ती गई। लोग अयोध्या की वीथियों पर राम का अनुगमन करने निकल पड़े। पूरा समूह जब सरयू तट पर पहुँचा तो देखा राम सीने तक गहरे पानी में खड़े, जैसे किसी को गौर से देख रहे थे; फिर एकाएक लक्ष्मण!, कहकर आगे बढ़े। लक्ष्मण को सीने से लगाने के प्रयास में राम गहरे जल में पहुँच कर विलीन हो गए। छाया के साथ काया भी लुप्त हो गई।

अयोध्यावासी कुछ समय के लिए तो स्तब्ध रहे फिर एकाएक राम के विछोह में पागल हो उठे। एक जनरव उठा "राम के वियोग में जीवित रहना असम्भव है। हम श्री राम के अनुगामी हों" कह कर जनसमुदाय सरयू–जल में उतर कर गहरी धारा की ओर अग्रसर हुआ ही था कि एक गंभीर निषेधात्मक स्वर गूँजा।

"अविवेकी मत बनो, अयोध्यावासियों।"

सब लोग रुक गए। लोगों ने देखा एक टीले पर खड़ा तेजवान् तपस्वी उनको आगे बढ़ने से रोक रहा था।

तपस्वी के स्वर में ओज था, अधिकार था। उसकी वाणी निषेधात्मक न रह आदेशात्मक थी, जिसकी अवहेलना असम्भव थी।

आत्मोसर्ग में प्रवृत्त अयोध्यावासी कुछ निश्चित कर सकें वह वाणी फिर गूँजी।

"अयोध्यावासियों! अपने राजा के पदचिह्नों पर चलकर उन पर आचरण करना, राजा के साथ आत्महत्या करने से श्रेष्ठतर होगा।"

"राम का एक बार वियोग तो हमने सह लिया। वह भी इस आस में कि निश्चित अवधि के बाद वह फिर मिलेंगे। परंतु अब! अब तो वह हमसे हमेशा के लिए बिछुड़ गए। अब जीवन सम्भव ही नहीं। राम मात्र राजा नहीं थे, वह हमारे भगवान्, हमारे ईश्वर थे, उनके बगैर हम जीने की कल्पना ही नहीं कर सकते" अयोध्यावासियों का कातर स्वर उभरा।

"मूर्ख मत बनो" तपस्वी के स्वर में झुँझलाहट थी। "ईश्वर न जन्म लेता है न ही मरता है। वह ईश्वर नहीं था। वह तुम सब की तरह एक साधारण मानव था जिसने जन्म लिया और मृत्यु को भी प्राप्त हुआ। हाँ, वह अपने शुभ और लोकरंजक कर्मों से 'महामानव' अवश्य बना। उसके पद–चिह्नों पर चलने का प्रयास करो। तुम सब राम बन सकते हो! वास्तविक 'राम–राज्य' तब ही आयेगा जब हर व्यक्ति राम बन जाएगा।"

राम साधारण मानव थे? कैसा प्रलाप कर रहा है बुड्ढा! लोगों में आक्रोश के स्वर उभरे। आक्रोश जनरव और फिर विप्लव में बदल गया। किसी एक ने "राम साधारण मानव थे?" कहकर तपस्वी की ओर एक पत्थर फेंका। इसके बाद तो भीड़ में अधिकांश नागरिक पत्थर मारने लगे। वह भूल गए कि साधु, वह भी निहत्थे वृद्ध पर आक्रमण नीति विरुद्ध है। भीड़ अपनी नीति स्वयं निर्धारित करती है।

ऊँचे टीले पर होने के कारण अधिकांश पत्थर तपस्वी तक नहीं पहुँच पाये। किन्तु अचानक एक पत्थर आकर तपस्वी के सिर पर लगा। तपस्वी चोट खाकर टीले से नीचे गिर पड़ा।

रक्तपिपासु जनसमुदाय तपस्वी पर लात–घूँसे बरसाने लगा। तभी, इस विवेकहीन भीड़ में से एक अबला तेजी से आकर तपस्वी पर लेट गई और अपने शरीर से तपस्वी को आवृत कर लिया। इसके पहले कि भीड़ स्त्री पर प्रहार करने से निवृत्त हो, एक आध प्रहार उस महिला पर भी हुए। फिर एकाएक भीड़ ने महिला से रक्षित तपस्वी को मृत सोच कर छोड़ दिया। जनसमुदाय का राम विछोह का विषाद तपस्वी पर व्यय हो चुका था। आत्महत्या का निश्चय मन से तिरोहित हो चुका था। वह सब धीरे–धीरे अपने घर को प्रस्थान कर गए। जो भी हो, तपस्वी घायल होने के बाद भी अयोध्या–वासियों के प्राणों की रक्षा करने में सफल रहा।

भीड़ के सरयू तट से चले जाने के बाद झुरमुट के पीछे से एक आकृति निकली। तारों के प्रकाश में वह आकृति महिला से रक्षित तपस्वी के ओर बढ़ी। महिला के सिर पर हाथ रख कर उसने कहा "उठो भाग्यवान्! हिंसक भीड़ चली गई। देखो, तपस्वी जीवित तो है।"

महिला तत्परता से उठ खड़ी हुई। पुरुष ने देखा, वृद्ध तपस्वी अचेत किन्तु जीवित है। उसकी नाड़ी और श्वास बहुत ही धीमी किन्तु चल रही थी। इतने आघातों के बाद भी तपस्वी जीवित है, इस पर वह आश्चर्यचकित थे। फिर धीमे से वह दोनों उस तपस्वी को उठाकर अपने घर ले आए।

दोनों का घर अयोध्या के उस भाग में था जहाँ अति साधारण नागरिकों का आवास था। साधारण किन्तु स्वच्छ घर, जिस में अल्प–सुविधाएं ही उपलब्ध थीं। एक दीपक देवस्थान पर और एक कक्ष के बीचों बीच प्रकाशमान था। दीपक का प्रकाश अब ऋषि के चेहरे व पूरे शरीर पर पड़ रहा था। दोनों ने देखा वह कोई साधारण साधु नहीं प्रतीत हो रहा था। उसके चेहरे पर अतीव तेज था। सारा शरीर जैसे

पत्थर को काट कर तराशा गया हो। वज्र सी कठोर हड्डियों पर तनी हुई मांसपेशियाँ और स्नायु तन्तु अत्यंत सबल थे।

महिला औषधि युक्त जल से उसकी चोट साफ करने लगी वहीं पुरुष उसके तलवों को सहलाने लगा। भुजाओं के घाव साफ करने हेतु जैसे ही महिला ने ऋषि का उत्तरीय हटाया; उसके मुँह से हल्की सी सीत्कार निकली। पुरुष की दृष्टि भुजाओं पर पड़ते ही उसकी भी आँखें विस्फरित हो गईं। ऋषि की भुजाओं पर प्रत्यंचा–चिह्न थे जो उसके धनुर्धर होने का संकेत कर रहे थे। उसे ऋषि की उँगलियों पर भी कठिन धनुष–डोर खींचने के कारण बने चिह्न भी दिखे। पुरुष को प्रतीत हुआ जैसे साक्षात धनुर्वेद उसकी कुटिया में उपस्थित है।

इसके पहले कि वह ऋषि व्यष्टि का विस्तार से अनुमान करे, ऋषि के शरीर में स्पंदन हुआ और उसने धीरे से आँखें खोलीं। पुरुष उसके सिर के पास आ गया। ऋषि ने पूछा, "मैं कहाँ हूँ?"

"आप एक अयोध्यावासी के गृह में सुरक्षित हैं देव!"

"अयोध्या में अब भी कुछ संतुलित और विवेकशील लोग हैं!" यह ऋषि का प्रश्न था अथवा टिप्पणी, यह पुरुष नहीं समझ पाया।

तभी स्त्री जल–पात्र में ऋषि के लिए मधु, लवण, जल का घोल ले आई। दोनों ने मिलकर ऋषि को पिलाया। ऋषि ने थोड़ी देर तक शांत रहने के बाद फिर से आँखें खोलीं। इस बार उनकी आँखें निस्तेज नहीं थीं। पेय से उनमे कुछ शक्ति का संचार हुआ। दंपति ने गोरस, हल्दी और मिश्री का पेय प्रस्तुत किया जिसके पान के बाद ऋषि चौतन्य होकर उठ बैठे।

फिर स्वस्ति मुद्रा में दंपति को आशीष देते हुए बोले, "मेरे जीवन रक्षा के लिए मैं आपका आभारी हूँ। मैंने सोचा था कि राम के साथ अयोध्यावासी प्रयाण करें या न करें मेरा प्रयाण निश्चित है" स्वर में हास्य का पुट था।

"मुनिवर, अयोध्यावासियों के विषाद के चरमोत्कर्ष पर, उनकी

रक्षा हेतु आप कैसे और कहाँ से अवतरित हुए?" ऋषि–मुनियों से सीधे–सीधे उनका परिचय पूछना धृष्टता मानी जाती थी।

"सिद्धाश्रम से।"

सिद्धाश्रम का नाम सुनते ही पुरुष सहम कर दो पग पीछे हट गया वहीं उसकी पत्नी मुनि के सामने प्रणत हो गई।

प्रकृतिस्थ होने में पुरुष को कुछ समय लगा; "राम के गुरु ऋषिवर विश्वामित्र!" कहकर वह भी दंडवत हो गया।

उन्हें आश्वस्ति और आशीष देते हुए विश्वामित्र बोले, "राम के वास्तविक गुरु तो वशिष्ठ हैं जिन्होंने उन्हें धर्म और कर्म की शिक्षा दी। मैंने राम को मात्र लोकरंजन का मार्ग दिखाया, बाकी राम तो स्वयं राम था।"

विश्वामित्र की उपस्थिति दोनों को आतंकित और क्षुब्ध करने को पर्याप्त थी। गृहणी धर्म से परिपूरित गृहणी इस क्षोभ से पहले उबरी। उसने सकुचाते हुए एक प्रकार के अपराध–बोध के साथ पूछा, "ऋषिवर ! आपने कुछ खाया पिया भी नहीं होगा। क्या आप हमारे घर मेरे हाथ का भोजन स्वीकार करेंगे?"

"क्यों, तुम्हारा भोजन क्या भीलनी शबरी की जूठन से अधिक अपवित्र होगा!"

महिला विह्वल हो उठी। वह आनंदाश्रु पोछती पाकशाला की ओर चल दी। दिग्विजयी विश्वरथ से रूपांतरित विश्वामित्र का आतिथेय किसी भी सम्राट् के लिए श्लाघनीय था।

"तुमने अपना परिचय नहीं दिया, नागर !"

"हम मिथिलावासी हैं, प्रभु! देवी उर्मिला के विवाह में हम लोग उनकी सेवा हेतु आए थे। तब हम अविवाहित थे। देवी उर्मिला के प्रयास से हम गृहस्थ हुए।"

"सीता और उर्मिला के देश से! तब ही तुम्हारे हृदय में करुणा और सहानुभूति शेष है", ऋषि के स्वर में प्रशंसा थी।

"गुरुवर ! यह कौस्तुभ और मैं गौरी हूँ।" कहते हुए गौरी ने ऋषि के सामने भोजन प्रस्तुत किया।

दोनों ने हाथ जोड़कर कहा, "देव, जो कुछ रूखा– सूखा कुटिया में था प्रस्तुत है। कृपया ग्रहण कर कृतकृत्य करें।"

ऋषि तृप्त होने के बाद गौरी से बोले, "देवि, बहुत दिनों के बाद ऐसा सुस्वाद भोजन मिला।" फिर मुस्कराते हुए कहा, "तुम्हारा नाम अन्नपूर्णा होना चाहिए था।"

रात्रिपर्यन्त विश्राम करने के बाद सुबह विश्वामित्र ने चलने का उपक्रम किया तो कौस्तुभ और गौरी उनके पैरों पर लोट गए, "ऋषिवर, अभी आप पूर्ण रूप से स्वस्थ नहीं हैं। अभी आपको विश्राम की अत्यंत आवश्यकता है। स्वास्थ्य–लाभ होने पर हम आपको एक पल भी नहीं रोकेंगे।"

विश्वामित्र स्नेह से अभिभूत होते हुए बोले, "विश्राम तो मैंने जीवन भर नहीं किया। 'चरैवेति–चरैवेति' ही मेरा जीवन सूत्र रहा। फिर भी तुम लोगों का आग्रह टालना असम्भव है। फिर तुम लोगों ने मेरी जीवन रक्षा भी की है।" कह कर विश्वामित्र उसी आसन पर लेट गए। लेटने से शरीर को विश्राम मिला, तब विश्वामित्र को आभास हुआ कि उनका शरीर कितना क्लांत था। शरीर को विश्राम की कितनी आवश्यकता थी। थोड़ी देर में ही ऋषि प्रगाढ़ निद्रा में लीन हो गए।

अपने क्रिया–कलाप से निवृत्त हो सायं पति–पत्नी विश्वामित्र के सम्मुख उपस्थित हुए। ऋषि को लगा कि वह कुछ निवेदन करना चाहते हैं, किन्तु सकुचा रहे हैं।

"तुम्हारे मन में कुछ चल रहा है। मैं कुछ सहायता कर सकता हूँ?"

"क्षमा हो मुनिवर ! हम देवी उर्मिला की सेवा में हैं, अतः देवी के अलावा उनके पति पर भी हमारा बहुत लगाव है। राम का नाम तो वर्तमान में सारे जग में गूँज रहा है..." फिर कुछ हिचकिचाते स्वर में

कहा, "क्या राम कथा में हमारे जमाई वीरवर लक्ष्मण का कोई योगदान नहीं?" गौरी के मुँह पर पीड़ा थी।

विश्वामित्र कुछ देर शान्त रहे जैसे मनन कर रहे हों, फिर एकदम से चौतन्य हो उठे।

"देवी, राम का अनंत चरित सीता, लक्ष्मण और हनुमान् के बिना कल्पनीय ही नहीं है।"

कौस्तुभ बीच में बोल उठा, "प्रभु, मेरी भार्या आर्य लक्ष्मण के बारे में विशेष रूप से परिचित होना चाहती है। सौभाग्य से आपने बालपन से लक्ष्मण और राम को देखा है, गढ़ा है। अतः उसकी जिज्ञासा शांत करने हेतु आपसे उत्तम कौन होगा? मेरी भी यही लालसा है।" कहकर दोनों करबद्ध होकर ऋषि की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा करने लगे।

"जितना मैंने देखा और जाना है उसको यदि तुम हृदयंगम कर सको तो तुम्हारा यह प्रश्न तुम्हें ही व्यर्थ लगने लगेगा। दोनों अलग हैं ही नहीं। दोनों में द्वैत मात्र इतना है कि राम काया है तो लक्ष्मण छाया।"

"सोचो, तो राम का चरित्र बिना सीता एवं लक्ष्मण के सम्पूर्ण हो ही नहीं सकता है। सीता राम की पत्नी होने के कारण राम को समर्पित थीं। वहीं लक्ष्मण के लिए ऐसी कोई बाध्यता नहीं थी। यथार्थतः लक्ष्मण का होना ही राम के निमित्त था। राम के लिए वह सबका विरोध कर सकते थे और समय–समय पर किया भी; चाहे वह भाई हो वा माता कैकेयी या स्वयं राजा दशरथ।"

"सोचो, मैंने सिद्धाश्रम की रक्षा हेतु राम को ही चाहा था। लक्ष्मण तो राम के पीछे छाया की भाँति चल दिया। इसी प्रकार राम के साथ सीता का वनगमन एक सोची समझी नीति थी। मैं और ऋषि अगस्त्य, दंडक वन और लंका की सामरिक परिस्थिति से पूर्ण रूप से परिचित थे। रावण को उसकी लंका में चुनौती देना आसान कार्य नहीं था। बूढ़ा हो जाने के बाद भी नारी–सौन्दर्य रावण की दुर्बलता थी।

उसे लंका से भरतखंड में लाने के लिए सीता का सौन्दर्य मछली के लिए बंसी के चारे के समान था।"

गौरी और कौस्तुभ के मुख पर आश्चर्य की रेखाएँ देख विश्वामित्र ने कहा, "हाँ, जो मैं कह रहा हूँ वह सत्य है। सीता का वनगमन पूर्वनियोजित था। किन्तु रावण भी बहुत बड़ा नीतिज्ञ था। खर–दूषण की मृत्यु के बाद वह राम की शक्ति से आतंकित था। अतः सागर से रक्षित लंका में अभेध्य दुर्ग में सुरक्षित रह कर उसने राम को पराजित करने की योजना बनाई। राम को लंका तक आने को बाध्य करने के प्रयोजन से वह सीता को ही पंचवटी से लंका उठा लाया। इस कूटनीति में रावण सफल रहा।"

विश्वामित्र फिर से अपने मूल विषय पर लौट आए। "मैं राम और लक्ष्मण को काया और छाया के रूप में देखता हूँ। यदि राम काया है तो लक्ष्मण उसकी छाया। कितना अद्‌भुत है कि, साधारण छाया सदैव श्यामल होती है, परंतु श्यामल राम की यह छाया गौरांग है। काया के साथ चलना साधारण छाया की नियति होती है। किन्तु इस गोरी छाया ने विवश न होते हुए भी सदैव काया का अनुगमन किया। कहते हैं बुरे समय (अंधकार) में छाया भी साथ छोड़ देती है। परंतु राम की यह छाया इन सभी 'छाया गुण–धर्मो' का अपवाद है। यह सेवा–धर्मी छाया कठिन समय में और अधिक सघन हो उठती थी। वनवास के समय पंचवटी में, रात्रि में जब अन्य छायाएं लुप्त हो जाती हैं, यह छाया कुछ दूर योगी की भाँति काया की रक्षा हेतु वीरासन में सन्नद्ध दृष्टिगत होती थी।"

वनगमन के समय राम ने लक्ष्मण को देख कर पूछा "तुम कहाँ?"

"तुम मेरे सर्वस्व जहाँ" कहकर लक्ष्मण साथ–साथ चल पड़े। राम भी अपनी छाया को कैसे मना करते?

"राम ने भरत के चरित्र पर संदेह करना वर्जित कर दिया है; फिर भी यदि सोचो तो भरत के प्रेम में लौकिक व्यवहार व राजनीति की संभावना

हो सकती है, परंतु लक्ष्मण... उनके सम्मुख ऐसा कुछ नहीं था। वह निर्लिप्त रह कर अयोध्या में ही बने रह सकते थे। लक्ष्मण की उपस्थिति सम्भवतः दशरथ कि मृत्यु कुछ समय तक निवार सकती थी। परंतु यह छाया धर्म के अनुकूल नहीं थी। सो अपनी सद्य–विवाहिता पत्नी और असहाय माँ को छोड़ श्यामल काया के पीछे–पीछे चल दिये।"

"व्यवधान के लिये क्षमा करें गुरुदेव, किन्तु कुछ लोगों का कहना है– राम जब भी, जिस किसी से भी उपकृत हुए, उसे 'भरत सम भाई' कहा और लक्ष्मण की उपेक्षा की; ऐसा क्यूँ? क्या यह प्रशंसा राजनीति से प्रेरित थी?" गौरी ने विनयपूर्वक कहा ।

"तथ्यों से कितने अनजान हैं वह लोग। लक्ष्मण इन सबसे ऊपर थे। कहीं छाया से भी कोई बढ़ कर हो सकता है? छाया तो अपनी होती है...सिर्फ अपनी। राम के लिए लक्ष्मण 'भ्रातृःस्वमूर्त आत्मनः' ही थे। उनकी तुलना किसी से हो ही नहीं सकती।"

"विचार करो छाया मात्र छाया है वह काया से महान् कैसे हो सकती है? काया छाया का गुणगान करे, ऐसा कभी सुना गया? हाँ, जब शक्ति लगने से लक्ष्मण मूर्छित होते हैं तब राम ने स्वयं कहा, "छोटा भाई होते हुए भी इसने सदैव पिता की भाँति मेरा संरक्षण किया।"

"लक्ष्मण मात्र छाया न होकर राम के कवच भी थे। राम जब–जब हताश हुए, तुम चाहे उसे नरलीला कह लो, लक्ष्मण ने उन्हें सांत्वना दी, सहारा दिया। लक्ष्मण तब ही उग्र होते थे, जब कुछ भी राम के विपरीत होता था।"

"रावण से विक्षुब्ध होकर विभीषण जब राम की शरण आते हैं, तमाम वर्जनाओं को नकारते हुए राम उन्हें स्वीकार कर अपनी शरण में लेकर उसे 'लंकापति' बना देते हैं। राम के शरणागत होते ही विभीषण, छाया लक्ष्मण के संरक्षण में स्वतः आ गये। जब क्रुद्ध रावण विभीषण के वध हेतु अमोघ शक्ति का प्रयोग करता है तो लक्ष्मण विभीषण को अपने पीछे कर उस शक्ति को अपने ऊपर झेल कर काया के 'पन' की रक्षा करते हैं। भक्ति का मार्ग सहज नहीं होता।"

विश्वामित्र कुछ देर तक सोचने के बाद बोले, "छाया पर कुछ अपकार्यों के लांछन भी लगे! ध्यातव्य है कि भक्ति योग में कर्मों में विवेक का स्थान ही नहीं है। भक्त में 'कर्ता भाव' का पूर्ण अभाव होता है। क्या भला है, क्या नहीं; यह उसके विचार क्षेत्र में है ही नहीं। उसका स्वयं का जीवन क्या... वह तो विदेह होता है। जब 'कर्ता' है ही नहीं तो कर्म किस प्रकार शुभ या अशुभ हो सकता है– फिर चाहे वह शूर्पणखा का कर्ण–नासाच्छेदन हो या सीता के परित्याग में सहायक होना।"

"कहते हैं आसन्न मृत्यु पर काया की छाया लुप्त हो जाती है। छाया का दिखना बंद हो जाता है। जब छाया नहीं तो काया का अस्तित्व भी समाप्त हो जाता है। तुम सभी इस तथ्य के साक्षी हो कि राम कथा में इसका उलटा हुआ। यहाँ 'छाया' के न रहने पर 'काया' लुप्त हुई। 'भक्त–वत्सलता' में राम अप्रमेय हैं।"

"गुप्त वार्ता के समय व्यवधान उत्पन्न करने के अपराध में लक्ष्मण प्राण–दंड के अधिकारी हो गये। राम लक्ष्मण को प्राण–दंड कैसे देते? 'रघुकुल–रीति' में व्यवधान न हो, अतएव लक्ष्मण ने स्वयं सरयू की शरण ली। छाया के लुप्त होने पर काया को भी जाना पड़ा। तब से अयोध्या में सरयू का यह घाट 'गुप्तार घाट' वैष्णवों का एक पवित्र तीर्थ बन गया।"

फिर आनंदातिरेक से विश्वामित्र बोल उठे, "वाह! श्यामल काया की गोरी छाया!"

राजनैतिक परिदृश्य

देवासुर संग्राम में देवताओं की विजय में पराक्रमी राजा दशरथ का बहुत योगदान था। दशरथ के शौर्य से ही देवगण असुरों से लगभग हारा युद्ध जीत सके। यह सत्य है कि राजा दशरथ को इन्द्र, अपने सिंहासन पर आधा स्थान देकर बैठाते थे। इससे देवताओं और मानवों में दशरथ की कीर्ति और सम्मान तो बढ़ा, परंतु वह स्वयं असुरों की आँख का काँटा बन गए। असुर इन्द्र से अधिक दशरथ से वैर मानने लगे। उनका मानना था कि दशरथ के रहते वह अपने चिर प्रतिद्वंद्वी देवताओं, विशेषकर विलासी इन्द्र, से प्रतिशोध नहीं ले सकते। उनके विजय मार्ग में अयोध्या सबसे बड़ी रुकावट थी, क्योंकि दशरथ के रहते–रहते अयोध्या सचमुच 'अयोध्या' थी।

कोई भी जाति हमेशा विजयी या सदैव विजित ही नहीं रह सकती। इसका आभास आर्यावर्त में भी परिलक्षित होने लगा था। सुदूर, भारत खंड के दक्षिण में समुद्र के बीचोबीच, एक द्वीप लंका में असुरों का एक नया नायक उभर रहा था। वह ऋषि विश्रवा और राक्षस राजकुमारी केकसी का पुत्र रावण था। अपने अजेय पराक्रम और अपरिमित महत्वाकांक्षा से बड़ी सरलता वह राक्षसों का नायक बन गया। ऋषि पुत्र होने के कारण वह वेदज्ञ और नीतिनिपुण भी था। रावण का एक सौतेला बड़ा भाई कुबेर भी था। कुबेर ऋषि विश्रवा का ही भरद्वाज ऋषि की पुत्री इडविडा से उत्पन्न हुआ था, अतः उसे वैश्रवण के नाम से जाना जाता था। कुबेर यक्ष संस्कृति का नायक और देवताओं का सहयोगी था। कुबेर के देवताओं के सहयोगी होने के नाते सम्पूर्ण राक्षस जाति कुबेर से द्वेष मानती थी। अतः रावण को कुबेर के विरुद्ध राक्षसों को एक सेना के रूप में तैयार करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। एक दिन उसने कुबेर को संदेश भेजा कि, उनका छोटा भाई

रावण उनको प्रणाम करने आना चाहता है। सौतेला ही सही, पर भाई होने के नाते कुबेर ने उसे बड़े प्रेम से महल में धूमधाम से स्वागत किया। वैसे भी रावण अपनी वीरता एवं शौर्य के कारण प्रसिद्ध हो चुका था। उसका स्वागत न करना आपदा को निमंत्रण देना था। सो कुबेर ने भी उसे पापग्रह की भाँति पूजा अर्चना से प्रसन्न और शांत रखने का उपक्रम किया था।

रावण अपने चुने हुए साथियों के साथ लंका के द्वार पर पहुँचा। लंका के सेनापति ने उसका स्वागत किया। यह भ्रातृस्नेह न होकर मात्र औपचारिकता हुई। रावण समझ गया कि यह सैनिक स्वागत तो मात्र दिखावा है। जरा सा भी संशय होते ही उसे और उसके साथियों को कैद किया जा सकता है। परंतु वह शांत रहा।

राजदरबार पहुँच कर रावण ने कुबेर को विनम्रता से प्रणाम किया। कुबेर ने सिंहासन से उतर कर रावण को भाई की भाँति गले लगाया। जैसे–जैसे दिन बीतता गया रावण की विनय से कुबेर आश्वस्त होता गया। रात होते–होते रावण कुबेर का पूर्ण विश्वास जीत चुका था। यही कारण था कि रात्रि विश्राम के लिए उसे निकट सम्बन्धी की भाँति दलबल सहित राजमहल में ही टिकाया गया।

परंतु आधी रात बीतते ही राजमहल में कोहराम मच गया। रावण के उद्भट सैनिकों ने सुरा के नशे में झूमते हुए सभी यक्ष प्रहरियों को बंदी बना लिया। जिन्होंने प्रतिरोध किया उन्हे बड़ी निर्दयता से मार दिया गया। मद्यप कुबेर की तंद्रा रावण की गर्जना से टूटी। उसने पाया कि रावण उसके पलंग पर पैर रखे खड़ा था। रावण का विशाल खड्ग उसके सीने पर था। कोई भी अनुचित प्रयास करने पर तत्क्षण खड्ग सीने से पार हो सकता था। कुबेर का नशा हरिण हो गया। उसे समझने में देर नहीं लगी कि उसने अग्नि को अपने अंक में लेकर बड़ी भूल कर दी। वह अब बंदी था। रावण के एक सैनिक ने कुबेर को बड़ी धृष्टता से उठाया और राजमहल की प्राचीर पर ले जाकर खड़ा कर दिया। रावण अपने खड्ग के साथ उसके पीछे चल रहा था। प्राचीर के नीचे लंका की जनता और यक्ष सेना खड़ी थी। उनको राजमहल

के अंदर विप्लव का भान हो गया था। वह सब राजमहल का मुख्यद्वार तोड़ने का प्रयास कर रहे थे। तभी बादलों की गर्जन की भाँति रावण की आवाज सबके कानों में पड़ी।

"लंका पर अब राक्षसराज रावण का आधिपत्य है। लंका अब राक्षसों की राजधानी बन चुकी है। लंकावासियों से हमारा कोई वैर नहीं है। उनकी सुरक्षा का दायित्व अब रावण का है"। कुछ रुक कर उसने सैनिकों को संबोधित किया, "यक्ष सैनिकों, तुम्हारा स्वामी अब मेरी करुणा पर जीवित है। सौतेला ही सही, पर यह मेरा भाई तो है ही। मैं इसे जीवन दान दे दूँगा। मगर यदि तुमने हमारा जरा भी प्रतिरोध करने का प्रयास भी किया तो, सबसे पहले तुम्हारा राजा मारा जाएगा। तुम्हारे शस्त्रागार मेरे सैनिकों के कब्जे में हैं। तुम अधिक प्रतिरोध न कर पाओगे। यक्षों की भलाई इसी में है कि वह आत्मसमर्पण कर दें। केकसी पुत्र रावण का वचन है कि, तुम्हें लंका से जीवित जाने दिया जायेगा। तुम्हारे लंका छोड़ने के उपरांत कुबेर को भी स्वतंत्र कर दिया जायेगा।"

सैनिक स्तब्ध थे। एक सेनानायक ने प्रश्न करने का साहस किया, "हम यह कैसे मान लें कि हमारे लंका छोडने के बाद तुम हमारे स्वामी कुबेर को छोड़ ही दोगे। यह भी सम्भव है कि हमारे जाते ही तुम हमारे राजा का वध कर दो।"

नायक का वाक्य पूरा ही हुआ था कि रावण के हाथों में गति हुई। कुबेर देख भी नहीं पाया रावण ने कब शूल हाथ में लिया और कब फेंका। शूल नायक के सीने को भेद कर जमीन में जा गड़ा था। रावण का लाघव और शक्ति देख कुबेर के घुटने कमजोर पड़ गये। वह प्राचीर पर ही ढुलक गया।

रावण की नृशंसता का अभीष्ट असर हुआ। सेना ने अस्त्र डाल दिये। लंका की प्रजा को 'लंका पति रावण की जय' का घोष करना पड़ा।

यक्ष सेना सकुशल लंका से निकल गई। परन्तु कुबेर को

रावण ने अपने पिता विश्रवा के अनुरोध पर ही छोड़ा। कुबेर भाग कर देवताओं की शरण में कैलाश में जा छिपा।

कुबेर का पीछा करते हुए रावण हिमालय तक गया। वह भरतखंड के आर्यावर्त से होकर ही वह हिमालय पहुँच सकता था। उसने आर्यावर्त के दो महत्वपूर्ण राज्य, 'अयोध्या' और मिथिला, के बीच का मार्ग चुना। मिथिला के राजा जनक तो विदेह थे, उनमें राज्य संवर्धन की लिप्सा का पूर्ण अभाव था। दशरथ भी अब युवा नहीं रह गए थे, अतः एक भगोड़े यक्ष के लिए व्यर्थ में झगड़े में नहीं पड़ना चाहते थे; सो रावण को इस मार्ग में कोई प्रतिरोध नहीं मिला।

असुरों के सबसे पुराने शत्रु देवता, उसका अगला लक्ष्य थे। रावण की यह कुबेर विजय का अभियान देवताओं के विरुद्ध प्रयाण की मात्र प्रस्तावना थी, देवलोक के मार्ग का सामरिक सर्वेक्षण था। कुबेर विजय से लौटते में वह इस मार्ग में, मिथिला और अयोध्या के बीच अपने सैनिक स्कंधावार बनाना नहीं भूला। भविष्य के अभियानों को निरापद बनाने व लंबे युद्ध की अवस्था में खाद्य व सामरिक आपूर्ति में यह स्कंधावार रावण को बहुत लाभकर सिद्ध होने वाले थे। अपने भाई कुम्भकर्ण और वीरपुत्र मेघनाद की सहायता से देवलोक विजय के बाद अयोध्या और मिथिला के बीच स्कंधावारों में स्थित रावण के यह सैनिक दोनों राज्यों की सीमाओं को नदी की धारा के भाँति धीरे–धीरे काटने लगे थे।

ऐसी राजनीतिक परिस्थितियों में बुढ़ापे की ओर अग्रसर होते राजा दशरथ का निःसंतान होना, स्वयं राजा के लिए, और उससे भी अधिक उनकी प्रजा के लिए चिंता का पर्याप्त कारण था। यदि राजा बगैर उत्तराधिकारी के मर जाता है तो सिंहासन के लिए तमाम प्रत्याशी खड़े हो जाते हैं। षड्यंत्र, भितरघात का दौर चल पड़ता है। सेना में भी कई सेनापति खड़े हो जाते हैं। इन सबका खामियाजा प्रजा को भुगतना होता है। राज्य कमजोर होने पर आक्रांताओं के आक्रमण की आशंका प्रबल हो जाती है। इन सबके ऊपर रावण की विश्व–विजय का स्वप्न अयोध्या के लिए ही नहीं पूरे भरतखंड की चिंता का विषय था।

ऐसी परिस्थितियों में चैत्र मास, शुक्ल–पक्ष की नवमी को राजा दशरथ की पत्नी कौसल्या के पुत्र उत्पन्न होने की सूचना से इक्ष्वाकु वंश में ही नहीं अयोध्या की प्रजा में भी हर्ष का सागर उमड़ उठा। जो विस्तारवादी राज्य निपूते राजा के मृत्यु की आशा लगाए बैठे थे, उनकी आकांक्षाओं पर तुषारापात हो गया। रावण की भौं में भी बल पड़े। उसने अपने स्कंधावारों को दोनों राज्यों के विरुद्ध आतंकी घटनाओं को तेज करने का संदेश भेजा।

भगवान् देता है तो झोली भर कर देता है। कालांतर में दशरथ की रानी कैकेयी के एक और सुमित्रा के दो जुड़वाँ पुत्र हुए। खुशी में इतना चंदन, कुमकुम उड़ा कि अयोध्या की वीथियाँ सुरभित और रंगीन हो उठीं। बसंत ऋतु में ही दीपावली मना कर प्रजा ने अपना हर्ष व्यक्त किया। आश्रित और मित्र राज्यों से उपहार और बधावे आये।

मिथिला राज्य से भी बधाई आई।

मृगया

क्षत्रियों में मृगया या आखेट का बड़ा महत्त्व होता है। मृगया से शारीरिक श्रम के अलावा अस्त्र–शस्त्र ज्ञान का, प्राकृतिक धरातल पर व्यावहारिक प्रयोग करने का अवसर मिलता है। प्रारम्भ में धरती पर खड़े होकर भागते हुए आखेट पर सन्धान का अभ्यास, उसके बाद अश्व दौड़ाते हुए शरसन्धान के प्रायोगिक ज्ञान की शिक्षा दी जाती थी। शिष्यों के इन विधाओं में निष्णात होने पर ही गुरु उन्हें एक टोली के रूप में आखेट हेतु जाने की अनुमति देते थे। एक दिन ऐसे ही स्वतंत्र आखेट पर निकले शत्रुघ्न ने कहा कि दूर से ही हिरणों को शरसन्धान के बजाय हम उन्हें जीवित ही पकड़ने का प्रयास करें तो वह सम्भवतः हमारी शक्ति का श्रेष्ठतम् परीक्षण होगा। सभी मान गए। राम बड़े भाई की भूमिका में आ गये। वह बोले, "वयस्क नर हरिण एक भैंसे के समान बलशाली होता है। उसके सींगों का आकार उसके शरीर के आकार से भी बड़ा हो सकता है। उससे सावधान रहने की आवश्यकता होगी। अतएव दोनों लघु भ्राता लक्ष्मण और शत्रुघ्न मेरे और भरत के संरक्षण

में ही मृग को पकड़ने का प्रयास करेंगे।'' भाइयों ने सिर हिला कर सहमति जताई।

चारों कुमार एक बड़े मृग झुंड का पीछा कर रहे थे। उनके लक्ष्य पर झुंड के दो सबसे शक्तिशाली नर हरिण थे। अश्वों की गति के साथ हरिणों की भी गति तेज होती गई। अश्वारोहियों को अति निकट जान पूरा झुंड एकाएक दो भागों में बँट गया। उनके लक्षित मृग एक–एक झुंड के साथ अलग–अलग भागे। हरिणों की नैसर्गिक बुद्धि जानती थी कि आखेटकों का लक्ष्य अधिकतर सबसे बलवान नर ही होते हैं। अतः दोनों नर अलग–अलग झुंड बना कर कम से कम एक की रक्षा करना चाहते थे। यह देख बगैर किसी पूर्व निश्चित युक्ति के चारो राजकुमार भी दो दलों में बँट गये। राम के पीछे लक्ष्मण और भरत का अनुगमन शत्रुघ्न ने किया।

यहीं से राम–लक्ष्मण और भरत–शत्रुघ्न की सुप्रसिद्ध जोड़ी बन चुकी थी।

धीरे–धीरे राम का अश्व चिह्नित नर के करीब पहुँचने लगा। लक्ष्मण राम के कुछ ही पीछे थे। एकाएक राम ने अश्व को एड़ लगाई और हरिण के बराबर आ कर बाएँ हाथ से उसके सींगों से पकड़ लिया। पीछे लक्ष्मण सतर्क थे। राम ने अश्व की वल्गा खींच कर धीरे–धीरे अश्व की गति कम की। हरिण की गति भी सींग से पकड़े हुए होने के कारण कम हो गई। राम ने बलपूर्वक सींगों को दाब कर हरिण का मुँह पृथ्वी पर दबा दिया और अश्व से उतर कर खड़े हो गये। हरिण अब तक घुटनों के बल बैठ चुका था, उसका प्रतिरोध समाप्त हो गया। वह पूर्ण समर्पण की मुद्रा में था।

तभी भरत और शत्रुघ्न आते दिखे। शत्रुघ्न की प्रसन्न मुद्रा से लग रहा था कि उनका अभीष्ट हो चुका। राम ने लाचार मृग को जीवन दान देते हुए छोड़ कर अपने आए हुए भाइयों कि ओर से मुड़े ही थे कि...

"अरे...अरे..." भरत की चेतावनी भरा स्वर गूँजा।

समर्पण की मुद्रा में निरीह बना नर–मृग राम की पीठ फिरते ही अचानक आक्रामक हो उठा। वह सींग झुका कर राम पर पीछे से आक्रमण करने वाला ही था। राम की पीठ मृग की ओर थी, अतः वह आसन्न संकट को नहीं जान सके...कि एक बार फिर सबके मुँह से आवाज निकली अरे...! सबकी आवाज में विस्मय था, चिंता थी।

इसके पहले कि नर मृग राम तक पहुँचता कि लक्ष्मण ने अपने अश्व से एक ही छलांग में नर–मृग को सींगों से पकड़ लिया था। मृग हिंस्र हो उठा। उसने पूरे बल से सींगों को ऊपर उछाला। लक्ष्मण का भार कम होने के कारण वह भी ऊपर उछले, पर सींगों को दृढ़ता से पकड़े रहे। हरिण की उछाल में हवा में ही अपने को संतुलित करते हुए पैंतरा बदल कर वह हरिण की पीठ पर धप्प से बैठ गये। लक्ष्मण ने पूरी ताकत से अपनी बलिष्ठ टांगों से हरिण को दबाया। हरिण साँस घुटने से शक्तिहीन होकर अगले पैरों के घुटने के बल आ गया। परंतु लक्ष्मण का क्रोध अभी भी शांत नहीं हुआ...राम भइया पर आक्रमण...! वह फिर धधक उठे। बाएँ हाथ से उन्होंने हरिण के विशाल सींगों को आगे की ओर ठेला... तड़ाक की आवाज से नर हरिण का विशाल सींग सिर के पास से टूट गया। राम ने लक्ष्मण को संयमित किया। हरिण अचेत हो गया था।

भरत ने आगे बढ़ कर हरिण की पीठ से लक्ष्मण को उतारा– "यह क्या किया लक्ष्मण, शक्ति का आवश्यकता से अधिक प्रयोग वर्जित है।"

लक्ष्मण फुँफकारे, "तो उसने राम पर आक्रमण क्यों किया", लक्ष्मण के स्वर में शेषनाग जैसी फुँफकार थी।

"तो क्या हुआ पशु तो मात्र पशु ही है" भरत ने समझाने का प्रयास किया। पर यह क्या। लक्ष्मण बड़े भाई के सामने तन कर खड़ा हो गया। एकाएक वह विशालकाय लगने लगा, उसने आक्रामक भाव से भरत की आँखों में देखते हुआ कहा, "पशु हो या और कोई, राम भइया का अनिष्ट चाहने वाले को मैं जीवित नहीं छोडूंगा; वह चाहे जो भी हो।"

भरत लक्ष्मण को एकाएक हिंस्र देख कर हतप्रभ थे। तभी राम ने लक्ष्मण के कंधों पर हाथ रखा "शांत लक्ष्मण, शांत। तुम्हारा प्रतिकार हो पूर्ण हो गया। भरत तुम्हारा बड़ा भाई है।"

लक्ष्मण का रौद्र रूप शांत हो गया। बड़वानल पर जैसे वर्षा हो गई हो। लक्ष्मण ने प्रकृतिस्थ होते हुए राम को प्रणाम किया। चारो भाई वन से लौट चले।

बाल्य और किशोरावस्था के बीच की वय के राजकुमारों के लिए यह अनुभव काफी लोमहर्षक था। शत्रुघ्न को इस घटना ने सर्वाधिक प्रभावित किया। सबसे छोटे होने के कारण माताओं के सबसे दुलारे थे। घर पहुँचते शत्रुघ्न ने बड़े विस्मयकारी भाव में यह घटना अपनी माताओं को बताई। बड़ी–बड़ी आँखें मटका कर बात करने के अंदाज से जहाँ सुमित्रा और कौसल्या मुस्करा कर रह गईं वही कैकेयी चिंतित हो उठी।

कैकेयी

दशरथ की तीनों रानियों में कौशल्या सबसे पहली पत्नी थी, अतः साम्राज्ञी का पद उन्हें स्वाभाविक रूप से मिल गया। कौशल्या से कोई संतान न होने के कारण दशरथ ने कैकय देश की राजकुमारी कैकेयी से विवाह किया। कैकय राज्य बहुत बड़ा तो नहीं था परंतु दुर्द्धर्ष योद्धाओं का देश होने के कारण महत्त्वपूर्ण था। कैकेयी सुंदर होने के अलावा शस्त्र–कला में प्रवीण थी। प्रसिद्ध था कि कैकय राजकुमारी अपने पिता 'अश्वपति' और भाइयों के साथ रणभूमि युद्ध हेतु भी जाती थी। कैकेयी के इन्हीं गुणों पर मुग्ध होकर दशरथ ने स्वयं विवाह का प्रस्ताव कैकय नरेश के पास भेजा। वय में कैकेयी से काफी बड़े दशरथ के साथ अपनी गुणवती युवा पुत्री का विवाह करना उसके पिता व भाइयों को रुचिकर तो नहीं लगा परंतु मना करना भी राज्य के लिए विपत्ति कारक हो सकता था। कहते हैं कि इस विवाह के बदले में कैकय नरेश ने दशरथ से वचन लिया था कि, उनकी पुत्री का पुत्र ही अयोध्या का उत्तराधिकारी होगा। कौशल्या इतने दिनों में

पुत्र नहीं दे सकी थी, अतः निश्चित था कि कैकेयी से जन्मा पुत्र ही उत्तराधिकारी होगा। दशरथ को राजा अश्वपति की शर्त मानने में कोई आपत्ति नहीं हुई। परंतु फिर भी राजा दशरथ को संतान नहीं हुई। ऐसी परिस्थिति में उन्होंने सुमित्रा से तीसरा विवाह किया। सुमित्रा बहुत बड़े राजघराने से नहीं थी अतः उसकी महत्वाकांक्षाएं ऊँची नहीं थीं। दशरथ की तीनों रानियों में सुमित्रा ही सबसे संतोषी और विनम्र थी। वह राजा के सदैव अनुकूल रहने के अलावा अपनी दोनों सपत्नियों को भी समुचित आदर देती थी। अतः दशरथ के रनिवास में अभी तक सबकुछ ठीक ठाक चल रहा था।

मगर कालगति हमेशा ऋजु रेखा में नहीं होती। विधाता कुछ न कुछ करतब करने में सदा से प्रवीण है।

पुत्रेष्टि यज्ञ और चारों राजकुमारों के जन्म के साथ ही रनिवास और रानियों के मायके में भी हलचल सी मच गई। प्रथम परिणीता तथा 'ज्येष्ठ पुत्र–प्रसूता' होने के कारण कौशल्या के मातृ–पक्ष में कौसल्या को राजमाता और राम के युवराज बनने में कोई संदेह नहीं था; वहीं कैकय–राज को राजा दशरथ का दिया हुआ वचन एकाएक जोरों से याद आने लगा, जिसे वह यदाकदा दशरथ को स्मरण भी कराते रहते। सुमित्रा के बेटे न तो ज्येष्ठ थे न ही उसके प्रति दशरथ किसी प्रतिज्ञा से वचनबद्ध थे। ऐसी स्थिति में सुमित्रा इन सब झंझटों से विरत थी।

कैकेयी के मन में भरत के जन्म लेते ही उसको इक्ष्वाकु वंश का उत्तराधिकारी बनाने की कामना उदित हो चुकी थी। वह चाहती थी कि सुमित्रा के दोनों पुत्र भरत के अनुगामी हों। यही कारण था कि उसने सुमित्रा से मेलजोल बढ़ा लिया था। वैसे भी कौशल्या सदा गंभीर रहती थी। इस कारण उससे अधिक मेलजोल सम्भव ही नहीं था।

सुमित्रा के पुत्रों को भरत के पक्ष में करने की कैकेयी की लालसा सुफलित तो हुई; किन्तु अधूरी–

लक्ष्मण जन्म से राम के प्रति अनुरक्त थे। उनका राम के प्रति

प्रेम तब से ही जाहिर होने लगा था, जब से उन्होंने पेट के बल खिसकना सीखा था। चारो शिशुओं को शैय्या पर कहीं भी किसी भी क्रम में लिटाया जाता, लक्ष्मण थोड़ी ही देर में प्रयास कर राम के समीप पहुँच जाते। जहाँ यह सभी के लिए विस्मय और मनोरंजन का विषय था वहीं कैकेयी के लिए चिंता का।

लक्ष्मण के राम के प्रति जबरदस्त एकाधिकार की भावना ने शत्रुघ्न को स्वाभाविक रूप से भरत की ओर उन्मुख कर दिया।

जहाँ कौशल्या राम के अभिषेक और और स्वयं को राजमाता बनने के बारे में आश्वस्त थी, वही कैकेयी आशंकित थी अतः सतर्क रहती थी।

आज के आखेट में हुई यह घटना सतर्क कैकेयी के मन में शूल सी बिंध रही थी...लक्ष्मण इसी वय में यदि राम का पक्ष लेकर बड़े भाई भरत से अकारण ही हिंसक हो सकता है, तो युवा अवस्था में लक्ष्मण भरत के लिए चिंता का विषय हो सकता है। उसने विचार किया कि भरत के समर्थ होने तक उसे राम–लक्ष्मण की जोड़ी से दूर रखना होगा।

"भरत युवा होने तक अपने ननिहाल में ही रहेगा!" ऐसा निश्चय करके कैकेई, इसे कार्यान्वित करवाने के लिए दशरथ को सहमत करने चल दी।

कैकेयी सुंदर होने के साथ विदुषी एवं वीर भी थी। इतने गुण एक ही स्त्री में कम ही पाये जाते हैं। इसी कारण कैकेयी दशरथ के लिए अपरिहार्य सी हो गई। युद्ध भूमि में भी वह दशरथ के साथ उनके रथ में उपस्थित होती। कई बार विषम परस्थितियों में अपनी तात्कालिक बुद्धि और वीरता से वह दशरथ की प्राणरक्षक भी सिद्ध हुई। ऐसे ही प्रयाणों में राजा की प्राणरक्षा के प्रत्युपकार में उसको दो मनचाहे वर देने का वचन भी मिल चुका था। नीतिवती कैकेयी ने दशरथ के इन वरदानों को "समय आने पर माँग लूँगी" कह कर अपनी कूटिनीति के शस्त्रागार में ब्रह्मास्त्र की भाँति सँजो कर रखा था। राजा कैकेयी की

हर बात मानता था वहीं वह स्वयं राजा से हर बात मनवाने का विश्वास भी रखती थी।

----------x------x------x----------

वशिष्ठ

अयोध्या के चारो राजकुमार शैशव एवं बाल्यावस्था को छोडकर अब किशोरावस्था में प्रवेश करने वाले थे। राजा दशरथ के मन से वात्सल्य की जगह रजोगुणी क्षात्र भाव जाग्रत हो चुका था। गुरु वशिष्ठ भी सम्भवतः इसी परिवर्तन की प्रतीक्षा कर रहे थे। वृद्धावस्था की संतति अधिक मोहित करती है, यह सोच कर गुरु ने अभी तक चुप रहना ही श्रेयस्कर समझा।

एक दिन राज सभा में दशरथ ने स्वयं वशिष्ठ से कहा, "गुरुदेव, अभी तक इक्ष्वाकु वंश, अयोध्या और मैं स्वयं, आपके मार्गदर्शन और कृपा से फले फूले। मगर अब एक नई पीढ़ी का उदय हो रहा है। इस पीढ़ी का कुल और वंश परंपरा का निर्वाहन ही उसका ध्येय नहीं होना चाहिए। उसका ध्येय प्रजा के हित, कल्याण और राज्य की कीर्ति को और ऊँचाइयों तक पहुँचाने वाला होना चाहिए। गुरुदेव, यह आपकी अनुकंपा के बिना सम्भव नहीं हो सकेगा।" कहकर राजा हाथ जोड़ कर वशिष्ठ के सामने नत मस्तक हो गए।

वशिष्ठ का भी इष्ट यही था। उन्होंने बाल–मोह के आवरण से निकले दशरथ से प्रसन्नता से कहा, "राजन्, मैं इसी पल की प्रतीक्षा कर रहा था। चारो राजकुमारों का लालन काल व्यतीत हो चुका है। मुझे यह कहते हुए हर्ष हो रहा है कि क्षत्रिय राजकुमारों की भाँति चारों भाई खेल–खेल में ही अस्त्र संचालन और मृगया में समुचित रुचि ही नहीं ले रहे, वरन् काफी कुछ निष्णात भी हो चुके हैं। परंतु उन्हें अब प्रजा से परिचय करना चाहिए। इसके साथ ही उनका सैन्य प्रशिक्षण भी प्रारम्भ होना चाहिए", यह कह कर वशिष्ठ ने एक सैन्याधिकारी व एक कनिष्ठ मंत्री को राजकुमारों को जनता से परिचय कराने का आदेश दिया।

----------x------x------x----------

अभी दशरथ राजसभा से अंतःपुर पहुँचे ही थे कि संदेशवाहक ने सूचना दी, "प्रभु, गुरुदेव ने अपनी कुटिया से आपको आशीष भेजा है।" इतना कह कर वह विनीत मुद्रा में खड़ा हो गया।

दशरथ एकदम से असहज हो गए... अभी तो राजसभा में गुरुदेव के ही सानिध्य में था। फिर कुछ ही क्षणों के बाद ही उनका बुलावा कैसे? अवश्य ही कोई महत्त्वपूर्ण अथवा गोपनीय बात होगी। यह सोचते हुए राजा तत्काल ही गुरु कुटी में प्रस्तुत हुए। दशरथ की अभ्यर्थना के बाद वशिष्ठ ने उन्हें आशीर्वाद देकर उपयुक्त आसन दिया। राजा के आसन ग्रहण करते ही वशिष्ठ बगैर किसी भूमिका के बोले, "राजन्, ज्ञात होगा अयोध्या और मिथिला के मध्य के वन प्रदेश में केवल वहाँ के मूल वनवासी ही बसते हैं। दोनों देशों ने इन वनवासियों को अपनी संस्कृति के अनुसार स्वच्छंद जीवन यापन करने के लिए पीढ़ियों से छोड़ रखा है। इस प्रदेश को जस का तस छोड़ने का एक कारण और भी था। राजनीति से उदासीन वनवासियों का यह क्षेत्र अयोध्या एवं मिथिला राज्यों के मध्य टकराहट रोकने का माध्यम भी रहा है। किन्तु इधर कुछ वर्षों से इस वनांचल में अराजकता व्याप्त हो रही है। यह तो तुम्हें ज्ञात ही होगा?"

"हाँ, गुप्तचरों की यही सूचना है कि उस प्रदेश के राक्षस स्कंधावार, जिन्हें रावण ने इन्द्र और कुबेर पर नियंत्रण हेतु स्थापित किया था, वह एकाएक सक्रिय हो गए हैं। उन स्कंधावारों के राक्षसों ने अब वनवासियों पर अत्याचार करना प्रारम्भ कर दिया है। इसके साथ ही वे वहाँ स्थित ऋषियों के आश्रमों की दिनचर्या और धर्मकार्यों में भी विघ्न डाल रहे हैं।"

दशरथ गुरु की प्रतिक्रिया जानने के लिए रुके; पर गुरु मात्र दशरथ को देखे जा रहे थे। उन्हे लगा कि गुरु दृष्टि में प्रश्न था कि इस सूचना के बाद भी राजा ने कोई कार्यवाही क्यों नहीं की ?

गुरु की प्रश्नवाचक दृष्टि से कुछ असहज होते हुए दशरथ ने सफाई दी, "वैसे वहीं पर शंबर विजेता विश्वामित्र का भी आश्रम है। यदि बात अधिक बढ़ेगी तो विश्वामित्र जी स्वयं निबटने में सक्षम हैं।"

"यह जानते हुए भी कि विश्वरथ अब क्षात्र धर्म त्याग कर ब्रह्म विद्या का अभ्यास कर रहे हैं। क्रोध और हिंसा से वह अंतिम रूप से विरत हो चुके है?" गुरु के स्वर में उपालम्भ था।

दशरथ आँखें नीची करते हुए लगभग फुसफुसाते हुए बोले, "अभी चारों राजकुमार कच्ची अवस्था में हैं। मैं नहीं चाहता कि रावण, जो अभी तक अयोध्या की गतिविधियों से तटस्थ है, उससे अकारण ही वैर आमंत्रित करूँ। इसी नीति का अनुसरण करने का निश्चय लिया है मैंने। जैसे ही चारों राजकुमार आपके प्रशिक्षण में समर्थ हो जाते, आर्यावर्त से रावण के स्कंधावारों को नष्ट कर दिया जाएगा।"

"ऐसा नहीं है राजन्, रावण बहुत बड़ा नीतिज्ञ है। हिमालय में इन्द्रलोक के बाद अब अयोध्या और मिथिला ही रावण की राज्य विस्तार की नीति में हैं। जनक के कोई पुत्र नहीं है, अयोध्या भी अभी तक बिना उत्तराधिकारी के थी। अतः रावण दोनों राज्यों का क्षीण होना ध्रुव सत्य मान रहा था। परंतु अब अयोध्या को एक नहीं, चार–चार योग्य उत्तराधिकारी मिल गए, तब उसका यह सपना पूरा नहीं हो सकेगा। इसी कारण अब रावण अपनी विस्तारवादी महत्त्वाकांक्षा के चलते दोनों राज्यों को अप्रत्यक्ष चुनौती दे रहा है। फिर भी अभी रावण इस स्थिति में नहीं है कि वह सुदूर लंका से अयोध्या और मिथिला की सम्मिलित शक्ति का सामना कर सके। इसलिए उसने दोनों राज्यों को एक–एक कर पराभूत करने का उद्यम प्रारम्भ कर दिया है।"

राजा के मौन को परिलक्षित कर गुरु ने कहा, "अयोध्या को समर्थ उत्तराधिकारी मिल जाने के कारण रावण ने एक निश्चित कूटनीति से मिथिला का संधान किया है। उसने महान शक्तिशाली गंधर्व पुत्री ताटका, व ताटका पुत्र मारीच और सुबाहु को इस कार्य के लिए नियुक्त किया है। वर्तमान में ये दुष्ट वन प्रदेश की सीमा को मिथिला की ओर, बाढ़ की नदी के भाँति धीरे–धीरे काट रहे हैं। वहाँ स्थित आर्य सभ्यता के प्रतीक ऋषि आश्रमों को तहस नहस करना एक निश्चित रणनीति है। मिथिला नरेश भी तुम्हारी तरह ही अभी रावण का कोई प्रतिरोध नहीं कर रहे हैं। जनक के नीतिकार उन्हें तबतक सैन्य

कार्यवाही स्थगित करने की मंत्रणा दे रहे हैं, जबतक रावण गौतम ऋषि के आश्रम की सीमा नहीं लाँघता।"

"राजन्, मेरा मानना है कि शत्रु को एक सैन्य नीति के तहत ढील देना उचित है। परंतु रावण इस तथ्य से परिचित है कि यह ढील एक नीति नहीं है। यह मात्र तुम दोनों राजाओं की निष्क्रियता है। वह इस सुयोग का समय रहते वह लाभ उठाना चाहता है। रावण का अनुमान सम्भवतः सत्य है कि जब वह मिथिला पर आक्रमण करेगा, तब तुम अपने पुत्रों को इस भयंकर समराग्नि से बचाने हेतु मिथिला की सैन्य सहायता करने से विरत रहोगे।"

कुछ देर रुकने के बाद वशिष्ठ ने चेतावनी भरे शब्दों से दशरथ को झकझोर सा दिया, "और मिथिला को जीत कर वहाँ अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के बाद, वनवासियों की वेशभूषा में रावण की सेना अयोध्या में प्रवेश करेगी। जब तुम तथाकथित वनवासियों की ओर उन्मुख होंगे तभी, पर्वत प्रदेश से रावण की इंद्र–जयी सेना उत्तर दिशा की ओर से तुम पर टूट पड़ेगी। अयोध्या की सेना चक्की के दो पाटों के बीच पीस दी जाएगी।"

"अतः दशरथ! यदि कुछ करना है तो सबसे उचित समय यही है। तुम्हें मिथिला नरेश से इस संबंद्ध में मंत्रणा करनी चाहिए। और यह मंत्रणा गुप्त होनी चाहिए जिससे रावण को एकाएक कोई भी कदम उठाने का अवसर न मिल सके।"

दशरथ कुछ नहीं कह सके। मात्र गुरु को मस्तक नवा कर चल दिये। उनके मन में क्षात्र भाव का उदय होने लगा था। वशिष्ठ ने जाते हुए दशरथ की पीठ को देखा। वह एकदम सीधी थी। शिर गर्व से तना था। उन्हें संतोष हुआ कि उनकी मंत्रणा का राजा पर उचित और कल्याणकारी प्रभाव हुआ।

विश्वामित्र

ब्रह्मर्षि होने के उपरांत रजोगुण त्याग विश्वामित्र अपने आश्रम में यज्ञ, वेदचर्चा और शिक्षा–दीक्षा का कार्य कर रहे थे। एकाएक सुदूर लंका की रक्षसंस्कृति की गतिविधियों ने उनको उद्विग्न कर दिया। यह दैव योग था अथवा नियति थी, कि यह वनांचल और उनका आश्रम, लंकेश्वर रावण के, हिमालय की देव संस्कृति विजय प्रयाण के मार्ग में पड़ रहा था। कुबेर ने रावण से पराजित होने के बाद अपने पिता की सलाह से हिमालय में आकर देवताओं की शरण ली। उसने लंका से इतनी दूर बस कर सोचा था कि हिमालय तक रावण नहीं पहुँच सकेगा। परंतु पराक्रमी के लिए कोई भी स्थान दुर्गम नहीं होता। रावण के हिमालय संधान मार्ग में देव संस्कृति समर्थक अयोध्या एवं मिथिला का विशाल सम्राज्य पड़ता था। रावण महान् कूटनीतिज्ञ था। उसने इन दोनों महान् राज्यों के बीच के वनमार्ग से हिमालय तक पहुँचने का निर्णय लिया। उसके दूतों ने बताया कि दोनों देशों के सम्राट् वृद्ध हो चुके हैं। उनमे अनावश्यक युद्धों में पड़ने की ललक नहीं बची।

सो, रावण ने दोनों राज्यों को संदेश भेजा "रावण का लक्ष्य कुबेर और मात्र कुबेर है। अयोध्या तथा मिथिला से उसकी यदि मित्रता नहीं तो वैर भाव भी नहीं है। वह अपेक्षा करता है कि उसे दोनों राज्यों के बीच स्थित निर्जन मार्ग से गुजरने में कोई व्यवधान नहीं किया जाएगा। इस सैन्य संधान में किसी प्रकार के अवरोध को शत्रुता माना जायेगा। लंका के सैन्य प्रयाण में अवरोध की स्थिति में अवरोध करने वाले सम्राट् को रावण का कुबेर से भी बड़ा शत्रु माना जायेगा। राक्षस सेना अपनी पूरी शक्ति से उस राज्य का विनाश कर देगी।"

राक्षसों के अत्याचारों की कहानी सर्वविदित थी, इसलिए दोनों राज्यों ने रावण को रास्ता देने में ही अपनी भलाई समझी। यहाँ तक कि अयोध्या, जिसने दैत्यों के विरुद्ध कई बार देवताओं का साथ देकर देवताओं को विजयी कराया था, के वृद्ध राजा ने भी अपने किशोर राजकुमारों की सुरक्षा को देखते हुए रावण को रास्ता देने में ही अपनी कुशल समझी।

कुबेर के मान मर्दन के साथ ही देवों को भी अपनी शक्ति का परिचय करा कर लौटते हुए रावण कुशल सैन्यनीति के तहत अयोध्या और मिथिला के बीच के निर्जन स्थान में अपना स्कंधावार स्थापित कर उसका नियंत्रण एक भयानक ताटका नामक यक्षिणी को सौंप कर लौटा। यह वही स्थान था जहाँ विश्वामित्र ने अपने आश्रम का निर्माण किया था। पहले तो ताटका ने विश्वामित्र के आश्रम खोलने को एक सामान्य घटना माना परंतु विश्वामित्र के बढ़ते हुये प्रभाव, उनके आश्रम में बढ़ती संख्या ताटका को खलने लगी। सो उसने अपने बेटे मारीच और सुबाहु से इन तपस्वियों को परेशान करके भगाने की आज्ञा दी।

तबसे मारीच और सुबाहु जब चाहते आश्रम में जाकर यज्ञों का विध्वंस कर देते, ऋषियों को सताते और कभी–कभी हत्या भी कर देते। सारे वन प्रभाग और आश्रम में आतंक का माहौल छाने लगा; कुछ ऋषि और ब्रह्मचारीगण तो आश्रम को किसी निरापद स्थान पर स्थानांतरित करने की चर्चा भी करने लगे। परंतु विश्वामित्र शांत बने रहे। वह अपना यज्ञ, संध्या एवं शिक्षण का कार्य अबाध रूप से चला रहे थे। राक्षस आते, यज्ञ विध्वंस कर वेदी में अपशिष्ट पदार्थ डाल देते। शिष्यों को प्रताड़ित कर चले जाते परंतु विश्वामित्र शांत बने रहते। ब्रह्मचारियों की चिकित्सा और वेदी के शुद्धीकरण के बाद पुनः वह अपने ब्राह्मणोचित कार्यों में लग जाते। ऐसा नहीं था की वह इस आतंक से अछूते हों। कुशल सेनापति होने के कारण वह जानते थे कि यह जगह छोड़ कर जाने का निर्णय राक्षसों की आकांक्षा के लिए पूर्णकाम सिद्ध होगा। इससे असुरों का मनोबल बढ़ेगा और उनके

आतंक की सीमा वन–प्रदेश से नगरों तक प्रसार करने लगेगी। उनका मानना था कि इस चिंगारी को यहीं और पूर्ण रूप से शमित कर देना चाहिये।

वह मनन कर रहे थे कि उनके सम्मुख ब्रह्मचारीगण वनवासियों की एक भीड़ लेकर उपस्थित हुए। उनमें से एक ब्रह्मचारी ने करबद्ध निवेदन किया, "गुरुदेव, यह वनवासी बड़े संकट में हैं। यह आपके पास शरणागत हो उपस्थित हुए हैं।"

विश्वामित्र की प्रश्नवाचक मुद्रा देख वनवासियों का मुखिया सामने आया और साष्टांग दंडवत कर बोला, "महाराज! जबसे दुष्टा ताटका दंडक वन से यहाँ आई है तबसे हम लोग इसके अत्याचारों से त्रस्त हैं। ताटका के अत्याचारी राक्षस अनुचर जब चाहते हैं हमारी बस्ती में घुस कर सब कुछ तहस–नहस कर डालते हैं, हमारे पशुओं को उठा ले जाते हैं। मना करने पर हमें प्रताड़ित करते हैं और कभी तो हत्या भी कर देते हैं। गाँव के छोटे पशु, जिन्हें हम घर में संतान की भाँति पालते हैं, उन्हे हमारे सामने ही मार कर उनका कच्चा मांस भी खाने लगते हैं। अब तो उनका दुस्साहस इतना बढ़ गया है कि...कि..." वह वृद्ध आगे नहीं बोल पाया और फूट–फूट कर रोने लगा।

विश्वामित्र निर्विकार बने रहे। एकदम शांत।

एक असहज सन्नाटा छा गया था। आश्रम के ब्रह्मचारी ने कुछ कहना चाहा पर विश्वामित्र ने संकेत से उसे रोक दिया।

"जिसकी पीड़ा है उसे ही कहने दो ब्रह्मचारी! रोना और बिलखना किसी समस्या का उपचार नहीं है। यह मानव में दीनता पैदा करता है, तथा आततायी को अधिक अत्याचार करने को प्रोत्साहित करता है", फिर मुखिया से उन्मुख हुए "यदि तुम्हारा रुदन समाप्त हो गया हो तो अपनी बात पूरी करो। मैं सुन रहा हूँ।" ऋषि के स्वर में कोई करुणा या आश्वासन नहीं था।

मुखिया इस कठोरता के लिए तैयार नहीं था। वह यह सोच कर आया था कि विश्वामित्र उसकी करुणगाथा से द्रवित होकर पुनः

क्षत्रिय विश्वरथ का रूप धारण कर लेंगे और उन्हें राक्षसों के अत्याचार से बचा लेंगे। उसने ऋषि की इस दो टूक बात से अपने को ही नहीं पूरे वनवासी समुदाय को अपमानित महसूस किया। वह तन कर खड़ा हुआ और स्पष्ट स्वर में बोला, "ऋषिवर, हम तो क्षात्र–धर्मध्वज विश्वरथ से अपना कष्ट कहने आए थे, जिन्होंने राक्षसों के अत्याचार से जनसाधारण को मुक्त कराने हेतु अजेय शंबर से लोहा लिया और उसे मार गिराया था। हम यहाँ मात्र ऋषि विश्वामित्र को पाकर निराश हुए। जाते–जाते मैं अपनी वह पीड़ा भी सुना देता हूँ जिसे केवल गृहस्थ ही जानता है; ब्रह्मचारी और ऋषिगण के लिए सम्भवतः वह उतनी बड़ी बात न हो।"

ऋषि विश्वामित्र सुन रहे थे।

"मारीच, सुबाहु व उनके गण, मात्र हमारे पशुओं का ही अपहरण नहीं करते बल्कि हमारी महिलाओं का भी अपहरण कर लेते हैं। कुछ एक तो उन्हें हमारी आँखो के सम्मुख ही दूषित करके छोड़ जाते हैं। हमारे यहाँ इन दूषित महिलाओं का एक अलग मुहल्ला ही बन गया है। कभी अवकाश के क्षण में उनकी दुर्गति भी देख लीजियेगा, ऋषिवर", इतना कह कर वह बिना प्रणाम किए ही जाने लगा।

"रुको" एकाएक विश्वामित्र का गंभीर स्वर गूँजा। उनका स्वर इतना प्रभावशाली था कि सभी ग्रामीण रुक गए और विश्वामित्र की ओर देखने लगे।

"दुर्बलता मनुष्य का सबसे बड़ा अपराध है। अत्याचार का जितना दोषी अत्याचारी होता है उससे कहीं अधिक दोषी अत्याचार सहने वाला होता है। दुर्बल मनुष्य जब अत्याचारी का विरोध नहीं कर पाता तो सारी कुंठा वह अपनों पर ही निकालता है। जैसे कि इस समय तुम कर रहे हो। स्वयं अपनी, अपनी स्त्रियाँ और अपने पशु–धन की रक्षा में जो तुम्हारे हाथ नहीं उठ पाये, उसका प्रतिकार तुम मेरे ऊपर कटु व्यंग्यबाण चला कर कर रहे हो, नायक?

ग्रामीण मौन रहा परंतु उसका उन्नत भाल विश्वामित्र के सम्मुख अभी भी झुका नहीं। वह हठीला वैसे ही खड़ा रहा।

विश्वामित्र सीधे मुखिया की ओर देखते हुए फिर बोले "विश्वरथ ने जब शंबर के अत्याचार के विरुद्ध अभियान किया था तो विश्वरथ के पीछे पीड़ित समाज की सेना थी। उस सेना का भी शंबर के पराभव में उतना ही योगदान दान था जितना कि स्वयं विश्वरथ का....।"

ब्रह्मचारियों को अब विश्वामित्र की कठोरता का कारण समझ में आने लगा था। वह वनवासियों के अहं को जाग्रत करना चाहते थे। जिसमें वह सफल होते भी दिख रहे थे। ग्रामीणों के चेहरे के ऊपर से दीनता का भाव समाप्त होने लगा था। उनकी आँखों में आक्रोश का भाव तिरने लगा था।

शिष्य गण को विचार करना पड़ा कि विश्वामित्र स्वयं अपने को 'प्रथम–पुरुष' में क्यों संबोधित कर रहे हैं। वह विश्वरथ की जगह 'मैं' शब्द का प्रयोग क्यों नहीं कर रहे हैं। सम्भवतः इसलिए कि ब्रह्मर्षि होने के बाद वह 'मैं' से मुक्त हो चुके थे!

कुछ देर तक दोनों पक्षों में सन्नाटा पसरा रहा। विश्वामित्र ने चुनौती भरे शब्दों में पूछा, "क्यों तुम लोग विश्वरथ के सैनिक बनने को प्रस्तुत हो?''

इस बार पूरा समूह समवेत स्वर में बोला, "हाँ, हम सब तैयार हैं।"

"ठीक है कल से ब्रह्मचारी वीरकेतु तुम्हें आत्मरक्षा के लिए आवश्यक सैन्य प्रशिक्षण देना प्रारम्भ करेगा। इस प्रशिक्षण में ग्रामीणों को ग्राम के चारों ओर खाईं खोदना, व्यूह–रचना, शस्त्र संचालन तथा अग्नि का सामरिक प्रयोग करना बताया जाएगा। यह कार्य बहुत गुप्त रूप से होगा। सैन्य–प्रशिक्षण पूर्ण होने तक ऊपर से दिखने में सबकुछ वैसा ही रहना चाहिए जैसा कि अब तक था। सैन्य–नीति में आकस्मिक और अप्रत्याशित आक्रमण शक्तिशाली शत्रु के विरुद्ध

विजय का सबसे बड़ा हथियार है। यह सब तुम्हें वीरकेतु भलीभाँति समझा देगा" कह कर विश्वमित्र, उठ कर खड़े हो गए।

फिर वीरकेतु की ओर मुड़ कर बोले, "और वीरकेतु तुम्हारे लिए यह स्पष्ट निर्देश है कि तुम मात्र प्रशिक्षण ही दोगे। अत्याचारियों का किसी प्रकार भी मुकाबला तब तक न किया जाय जब तक मेरा स्पष्ट आदेश न हो।"

वनवासी उनके इस आदेश को सिर हिला कर स्वीकार कर चल पड़े। जाते समय उनके चेहरे पर ओज था। दीनता के भाव तिरोहित हो चुके थे। वह चलते समय विश्वामित्र को प्रणाम करना भी भूल गए। उनके मन में केवल एक ही भाव था...'प्रतिकार'!

वनवासियों के जाने के बाद सारे शिष्य गुरु को घेर कर खड़े हो गए। आज जो कुछ इस वार्तालाप से सीखा था, उस पर अब चर्चा का समय था। एक ने पूछा, "गुरुदेव, आपने वनवासियों को क्रोधित कर दिया। क्रोध का परिणाम बुरा भी हो सकता था?''

"यदि यह प्रश्न न पूछा जाता तो मैं समझता कि मेरा प्रशिक्षण व्यर्थ है। देखो, यहीं पर मनन और विवेक की आवश्यकता होती है। कोई भी सिद्धान्त सदैव के लिए नहीं होता। परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहना आवश्यक नहीं अनिवार्य है।"

"कोई भी तथ्य सदैव हानिकारक या लाभदायक नहीं होता। विष अल्प मात्रा में औषधि का काम कर सकता है और अमृत की अधिकता अकल्याणकारी हो जाती है। इसी प्रकार क्रोध सदैव हानिकारक नहीं है। क्रोध के बगैर वीरता नहीं आ सकती; क्योंकि क्रोध से विरोध करने की इच्छा जागृत होती है। क्रोध के बिना प्रतिकार करने की शक्ति नहीं आ सकती। प्रतिकार की यह भावना, जब अपनी समस्त शक्तियाँ एकाग्र कर दमनकारी के विरुद्ध संघर्ष करने को तत्पर होती हैं, तब वह 'वीरता' कहलाती है। वह क्रोध कल्याणकारी है जो आत्मरक्षा अथवा पीड़ित को अत्याचारी से बचाने के लिए किया जाता है; क्रोध आत्मरक्षा के लिए परम उपयोगी है। दब्बू व्यक्ति को तो सभी

मार कर चले जाते हैं क्योंकि वह क्रोध नहीं करता। वहीं क्रोधी को कोई कुछ कह भी नहीं पाता क्योंकि वह तुरंत प्रहार कर सकता है। दब्बू होने से क्रोधी होना अच्छा है।"

"काम, क्रोध, लोभ, मोह संसार के सबसे बड़े बाधक हैं... यही तो बताया गया है न?" सबने हामी में सिर हिलाया।

"इन चारों प्रवृत्तियों में संतुलन होना आवश्यक है। यदि तुम काम के शमन के बिना केवल क्रोध का ही शमन करने का प्रयास करोगे तो इसी दशा को प्राप्त होगे जैसे यह वनवासी।"

"तो क्या आप एक बार फिर शस्त्र धारण करेंगे, गुरुदेव?"

"नहीं!" विश्वामित्र ने शांति से मुस्कराते हुए कहा।

"हर एक का अपना एक समय होता है; एक निश्चित समय के बाद परिवर्तन अनिवार्य है। इसी को काल की गति कहते हैं। मुझसे पहले अगस्त्य अत्याचार के विरुद्ध खड़े हुए, फिर विश्वरथ का समय आया। अब संसार को एक नये नायक की आवश्यकता है।" विश्वामित्र की आँखें भविष्य की ओर देख रहीं थीं।

अगले दिन ब्राह्ममुहूर्त में ही विश्वामित्र आश्रम से निकल पड़े। चलते समय वह वीरकेतु से गुप्त रूप से वनवासियों का विधिवत प्रशिक्षण करते रहने को बोले ताकि नायक के आने तक प्रतिकार की समग्र पृष्ठ भूमि तैयार हो चुकी हो।

कुछ शिष्य उन्हें सीमा तक छोड़ने चले। आश्रम से थोड़ी दूर जाने पर ही एकाएक भयानक ध्वनि हुई, चिड़ियों का कलरव रुक गया, जैसे किसी हिंस्र पशु को देख वन के सभी प्राणी स्तब्ध हो जाते हैं। वन में एक भयावह सन्नाटा छा गया। विश्वामित्र ध्वनि की दिशा में पलट कर चौकन्ने होकर खड़े हो गये। उन्हें ताटका आती दिखाई पड़ी। इस समय वह अकेली ही थी। उसके केश बिखरे हुए थे। वेशभूषा से लग रहा था क्रोध में वह अनायास ही शैय्या छोड़ कर उठ आई हो।

"बूढ़े विश्वाऽऽ, तुझमें शक्ति तो बची नहीं, इसलिए संन्यासी का स्वांग ओढ़ कर वन में आ छिपा है। फिर भी वनवासियों को भड़काने का षड्यंत्र रचने से बाज नहीं आ रहा है। आज मैं तुझे यमलोक भेज कर तेरी इस कायर काया से मुक्त किए देती हूँ।" कह कर वह पूरे वेग से विश्वामित्र पर झपटी।

विश्वामित्र तन कर खड़े हो गये। उन्होंने वर्जना में हाथ उठा कर बहुत जोर से डाँटा, "खबरदार! दंडक वन से अगस्त्य मुनि के डर से भागी हुई भीरु महिला, विश्वामित्र को विश्वरथ बनने को विवश मत कर। इस परिवर्तन में एक क्षण भी नहीं लगेगा। फिर तू कहाँ भाग कर जाएगी?"

विश्वामित्र की गर्जना से ताटका एकदम सहम गई। इस समय विश्वामित्र ऋषि वेश में क्रोधित रुद्र का अवतार लग रहे थे। उसने इधर–उधर देखा। वह नितांत अकेली थी। उसका साहस टूट गया। वह चुपचाप वापस लौट गई।

विश्वामित्र ने शिष्यों को वापस आश्रम भेजते हुए कहा, "ताटका को वनवासियों के मेरे यहाँ आने की सूचना मिल गई। अवश्य ही यह किसी गुप्तचर का कार्य है। वीरकेतु से कहना सावधान रहे।''

अयोध्या

सूर्य–वंशियों की राजधानी अयोध्या बड़ी वैभवशाली दिख रही थी। निवासियों के वस्त्र–आभूषणों से संपन्नता झलक रही थी। हाट सामग्रियों से लदे थे। देश–विदेश के व्यापारी मोल–भाव कर रहे थे। कभी किसी सामंत का रथ निकलता तो लोग खड़े होकर अभिवादन करते और फिर अपने कार्य में लग जाते। विश्वामित्र राजपथ से सम्राट् के सभा भवन की ओर जा रहे थे। उनकी तेजस्वी आकृति को देख लोग प्रणाम करते और जो उन्हें पहचान जाते, वह उनके पीछे–पीछे चल पड़ते। जब तक विश्वामित्र दशरथ की सभा तक पहुँचे, उनके पीछे नगरवासियों की एक भीड़ एकत्र हो चुकी थी। इस कोलाहल से प्रहरियों को विश्वामित्र के आगमन की सूचना मिल चुकी थी। विश्वामित्र

के ऋषि होने के अतिरिक्त विश्वरथ के शौर्य का इतिहास भी लोग नहीं भूले थे।

राजा दशरथ अपने दरबारियों व कुलगुरु वशिष्ठ के साथ विश्वामित्र का स्वागत करने द्वार पर ही मिले।

दशरथ सादर प्रणाम करने के बाद विश्वामित्र को बड़े आदर से वशिष्ठ को आगे कर अपनी सभा में ले गये। वशिष्ठ के पास के सिंहासन में विश्वामित्र को बैठाया और स्वयं भी विश्वामित्र के चरणों के पास बैठ कर बोले, "कैसे कष्ट किया ब्रह्मर्षि?''

विश्वामित्र हँसते हुए बोले, "क्या बगैर प्रयोजन तुम्हारे राज्य आने की ऋषियों को मनाही है?"

"नहीं ऋषिवर ! ऐसा कदापि नहीं है। आपका आगमन मेरा परम सौभाग्य है। मैं स्वयं अपनी तरफ से इंगित करना चाहता था कि मैं हर प्रकार प्रस्तुत हूँ।"

"अच्छा तो सबसे पहले अपना सिंहासन ग्रहण करो। सम्राट सिंहासन पर ही शोभा पाता है।"

भली–भाँति विश्वामित्र की पूजा अर्चना कर दशरथ सिंहासन पर बैठे।

"राजन्, राज्य में कुशलक्षेम तो है? तुम अपने परिवार समेत स्वस्थ तो हो?"

दशरथ ढलती आयु से निढाल थे, फिर भी इस प्रश्न को मात्र औपचारिक प्रश्न समझ कर स्वीकृति में सिर हिलाया "है देव, सब कुशल से है। मेरे चारों कुमार भी अब युवा हो चुके हैं और स्वस्थ हैं। थोड़ी देर में वह आपके दर्शन हेतु आ जायेंगे।"

विश्वामित्र ने कुछ गंभीर स्वर में कहा, " नहीं राजन्! न परिवार और न ही तुम्हारे राज्य में, दोनों जगह पूर्ण कुशल नहीं है। यदि होती तो मुझे यहाँ आने का कोई प्रयोजन ही न होता। परिवार में तुम्हारी बढ़ती उम्र के कारण तुम्हारा स्वास्थ्य चिंता का विषय बना हुआ है।

उधर सीमा पर रावण के स्कंधावार पनप रहे हैं। तुम इन अनिष्टों के प्रति सचेत हो?"

दशरथ विश्वामित्र के इस प्रश्न से आतंकित हो उठे। अभी कल ही वशिष्ठ ने इस आपदा की चर्चा की थी। उन्होंने वशिष्ठ की ओर देखा। वशिष्ठ शांत मुद्रा में विश्वामित्र को देख रहे थे।

"पहली अकुशल के सम्मुख तो मैं विवश हूँ, वह तो काल की गति है। ऐसा नहीं है कि मैं दूसरे संकट से अनभिज्ञ हूँ। परंतु जब तक चारों इक्ष्वाकु कुमार समर्थ नहीं हो जाते, मैं रावण से अनावश्यक मोर्चा नहीं खोलना चाहता," दशरथ के स्वर में चिंता अब पूर्ण रूप से झलक रही थी।

गुरु वशिष्ठ शांत मुद्रा में बैठे थे।

तभी चारों राजकुमारों ने सभा में प्रवेश कर सभी को प्रणाम किया और निकट आकर पहले वशिष्ठ फिर विश्वामित्र के चरण छूकर दशरथ को प्रणाम कर उनके सामने विनम्रता से खड़े हो गए।

विश्वामित्र देख रहे थे कि दो कुमार श्यामल और दो गौर वर्ण के हैं। सभी काफी शक्तिशाली दिख रहे थे परंतु सबसे आगे खड़ा, जो सम्भवतः सबसे ज्येष्ठ था, की देहयष्टि देखते ही बनती थी। यही सम्भवतः राम होगा, विश्वामित्र ने सोचा। फिर एकाएक पुराने विषय पर लौटते हुए विश्वामित्र बोले,– "एक पिता की दृष्टि से तुम्हारा विचार सही भी माना जा सकता है। परंतु राजनीति और कूटनीति की दृष्टि से यह बहुत बड़ी भूल है। अग्नि, ऋण, रोग व शत्रु का शमन प्रारम्भिक अवस्था में कर देना सबसे आसान होता है। मैं तुम्हें यही जताने आया हूँ। यदि अभी भी प्रयास न किया गया तो तुम्हारा और मिथिला का राज्य भी 'रक्ष–संस्कृति' में लीन हो जायेगा।" विश्वामित्र के स्वर में चेतावनी थी।

गुरु वशिष्ठ शांत मुद्रा में कुछ देर दशरथ को देखते रहे। दशरथ के माथे पर चिंता की लकीरें और स्पष्ट हो उठीं।

वशिष्ठ बोले, "तुम्हारा क्या विमर्श है कौशिक? राजा की चिंता

अपनी जगह पर उचित है परंतु प्रबल होते शत्रु को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता है। आप तो स्वयं नीति और शौर्य की प्रतिमूर्ति हैं?"

"शौर्य तो अभी भी समग्र रूप से शेष है पर क्रोध और समर से तो आप ने ही मुझे विरत किया है ऋषिवर", विश्वामित्र के स्वर में विनोद और वशिष्ठ के लिए आदर था।

इस बार शांत वशिष्ठ भी हँस पड़े।

"मैं आपको एक बार फिर से शस्त्र उठाने को नहीं कह रहा हूँ, ब्रह्मर्षि। आप मात्र अपना परामर्श तो दें। इतनी दूर से चल कर आप केवल यह सूचना देने मात्र तो आए नहीं होंगे। आपके मस्तिष्क में कोई ठोस योजना अवश्य होगी। क्या राजा को राक्षसों के स्कन्धावार पर आक्रमण करना चाहिए अथवा इस प्रयाण में मिथिला नरेश को भी सम्मिलित करना चाहिए?"

"नहीं, सैनिक प्रयाण तो बड़ी भूल होगी। रावण को अयोध्या पर आक्रमण करने का एक अवसर मिल जाएगा। अयोध्या अभी इतने बड़े युद्ध के लिए तैयार नहीं है। फिर, चक्रवर्ती सम्राट दशरथ का मिथिला के सामने हाथ पसारना शोभा भी नहीं देगा।"

दशरथ प्रत्यक्ष युद्ध की स्थिति न देख कर आश्वस्त होते हुए बोले, "ऋषि विश्वामित्र, आज्ञा करें कि मेरे लिए क्या करणीय है।"

विश्वामित्र की सारी भूमिका इसी क्षण के लिए थी। उन्होंने दशरथ की आँखों में देखते हुए कहा, "आज्ञापालन कर सकोगे राजन्?"

"आपकी हर आज्ञा शिरोधार्य है। आप कह कर तो देखें।"

"अपने चार पुत्रों में से राम और लक्ष्मण को कुछ समय के लिए मुझे दे दो।" विश्वामित्र की वाणी पूरी सभा में गूंज गई। दशरथ का चेहरा पीला पड़ गया, सभा स्तब्ध हो गई। ऐसे दुर्दांत राक्षसों के उन्मूलन हेतु ऋषि इन किशोरों को माँग रहे हैं!

दशरथ कुछ क्षण बाद अपने को संयत कर के बोले, "राम और लक्ष्मण ही क्यों ऋषिवर। आप कहें तो मैं आपके साथ चल सकता हूँ,

चुने हुए वीर सेनापति छद्म वेश में आपके साथ जा कर आपके निर्देशन में राक्षसों को भगा सकते हैं। यह दोनों तो अभी बालक हैं। यह राक्षसों का सामना कैसे करेंगे?" कहते–कहते दशरथ भावुक हो उठे।

"यह क्या राजन! तुम अपने सैनिकों को राक्षसों के सामने भेज सकते हो, पर अपने पुत्रों के समय भावुक हो जाते हो। साधारण सैनिक भी तो किसी माता–पिता के पुत्र ही होंगे", विश्वामित्र के स्वर में व्यंग्य था।

कुछ क्षणों के बाद बहुत ही दबे स्वर में दशरथ बोले "ऋषिवर यदि मैं आपके अनुरोध को मानने में समर्थ न हो सकूँ तो...?"

पूरी सभा में सन्नाटा छा गया। वशिष्ठ भी असहज हो उठे। पुत्रेषणा कितनी प्रबल होती है! उन्हें दशरथ पर दया आई।

विश्वामित्र अपना आसन छोड़ कर खड़े हो चुके थे। उनका मुखमंडल ब्रह्मतेज से प्रदीप्त हो उठा–

"मैं यहाँ न सुनने के लिए नहीं आया हूँ राजन्, तुम्हारे पुत्र मोह में मैं समस्त आर्यावर्त को पददलित नहीं होने दूँगा। मेरे पास और भी विकल्प हैं, पर...पर सम्भवतः वह तुम्हें रुचिकर नहीं होंगे।"

राजा दशरथ विश्वामित्र का यह रूप देख कर काँप उठे। उन्होंने सोचा, क्या विश्वामित्र उनके पुत्रों को बलात् ले जाएंगे? या फिर...अगले विचार से वह और भी आतंकित हो उठे। विश्वामित्र प्रचंड परशुराम के निकट सम्बन्धी हैं। यदि विश्वामित्र ने दशरथ को अनाचारी सम्राट् घोषित कर दिया तो परशुराम बड़वाग्नि के समान उन पर टूट पड़ सकते हैं। कार्तवीर्य के वध के बाद परशुराम की अनाचारी क्षत्रिय राजाओं का अंत करने के प्रण से सभी परिचित थे।

वशिष्ठ ने हस्तक्षेप किया, "दशरथ ! तुम विश्वामित्र को सम्भवतः पूर्णरूप से नहीं जान पाये। जब यह बोलते हैं तो उसके पीछे इनकी सोची समझी नीति अवश्य होती है। इनके मस्तिष्क में पूरी

भूमिका तैयार है। तुम्हारे पुत्र मात्र उसकी एक कड़ी हैं। मेरा विवेक कहता है कि विश्वामित्र का अनुरोध मानने में हम सभी का कल्याण है।"

"पर गुरुवर, चारो पुत्रों में राम और लक्ष्मण ही क्यों?" दशरथ विश्वामित्र की आज्ञा मानने को विवश थे। यह अपने प्रण से भी अधिक प्रिय राम को बचाने का यह अंतिम प्रयास था।

"राम में अनन्य क्षमताएं हैं। वह जब हमारे यज्ञस्थल की सुरक्षा करेगा तो उस समय स्वयं राम की सुरक्षा के लिए भी तो कोई होना चाहिये। सुना है लक्ष्मण राम की परछाईं की तरह है। ऐसे में राम की सुरक्षा के लिए लक्ष्मण से अधिक उपयुक्त कौन हो सकता है।" कह कर विश्वामित्र प्रसन्नता से मुस्कराये।

लक्ष्मण प्रसन्नता और उत्साह से चपल हो उठे।

निकष या कसौटी

राम और लक्ष्मण माताओं से अनुमति और गुरु और पिता का आशीर्वाद लेकर विश्वामित्र के साथ चल पड़े। नगर की सीमा पर पहुँच कर विश्वामित्र ने रथ वापस भेज दिया। रथ के साथ ही दोनों राजकुमारों के राजसी वस्त्र और आभूषण भी उन्होंने सारथी द्वारा वापस भेज दिये। इसके बाद विश्वामित्र पैदल ही राम–लक्ष्मण के साथ अपने आश्रम की ओर चल पड़े।

राम मौन रह कर परिस्थितियों की विवेचना करते थे वहीं, लक्ष्मण अपनी जिज्ञासा मुखर होकर प्रकट करते थे।

लक्ष्मण ने अपनी जिज्ञासा प्रकट की, "गुरुदेव, हम लोग रथ से अभी कुछ और दूर तक जा सकते थे। सरयू और गंगा के घाटों पर नाव द्वारा रथों को नदी पार करने की बड़ी सुंदर व्यवस्था है अयोध्या राज में।"

राम ने लक्ष्मण को रोकने का प्रयास किया परंतु विश्वामित्र ने उन्हें ऐसा करने से रोका।

"प्रश्न पूछना भी ज्ञान प्राप्ति की एक विधा है राम! तुम्हें ज्ञात होगा हमारे सभी शास्त्र प्रश्नोत्तर के रूप में ही रचे गए हैं। किसी तथ्य से परिचित होने पर जिज्ञासु के मन में कुछ प्रश्न उठना स्वाभाविक है। उनका समुचित उत्तर मिलने के बाद ही वह ज्ञान के रूप में समायोजित हो पता है।"

राम की वर्जना से सकुचाये लक्ष्मण फिर से उत्फुल्ल और उत्साहित हो उठे।

विश्वामित्र ने अपना संवाद जारी रखा, "हाँ, तो लक्ष्मण, मैंने रथ को इसलिए वापस कर दिया ताकि तुम्हें पैदल चलने का अभ्यास हो जाये और वन–मार्ग की बाधाओं व संकटों से परिचित हो सको। तुम्हें अब एक संघर्षमय जीवन के लिए अपने को शारीरिक और मानसिक रूप से तैयार करना है। देखो सरयू नदी तक हम लोग पहुँच गये। हम अब सारे दिन इसी सरयू के दक्षिणी तट पर चलते हुए शीघ्र ही गंगा और सरयू के संगम पर पहुँचेंगे। यह तो तुम जानते ही होगे कि कोशल राज्य की अंतिम सीमा इन्हीं दो नदियों का संगम निर्धारित करता है।"

लक्ष्मण अपनी गति को थोड़ा बढ़ा कर ऋषि के पास पहुँच कर बोले, "गुरुदेव, मैं हमेशा यह सोचता हूँ कि इस नदी का नाम 'सरयू' ही क्यों पड़ा। इसके पीछे कोई स्पष्ट कारण है या ऐसी बोलचाल में इसका नामकरण हो गया?"

विश्वामित्र मुस्कराए, "वत्स, कैलाश पर्वत पर एक बहुत सुंदर और पवित्र सरोवर है जो कि ब्रह्मा के मानसिक संकल्प से उत्पन्न होने की वजह से 'मानसरोवर' कहलाता है। अयोध्या के तटों से बहती यह नदी उसी पवित्र मानसरोवर से निकली है अतः यह 'सरयू' के नाम से जानी जाती है।"

संध्या होते–होते उन तीनों लोगों ने सरयू के किनारे एक आश्रम में विश्राम करने का निर्णय किया। यह आश्रम वनवासियों द्वारा निर्मित किया गया था। यहाँ तीर्थ लाभ करने वाले संतो के अलावा

वाणिज्य हेतु गुजरने वाले व्यापारी भी शरण लेते थे। यह स्थान अयोध्या राज की सीमा में था, अतः पूर्ण रूप से निरापद था।

संध्या करने का समय जान गुरु शिष्य सरयू किनारे पहुँचे। पहले विश्वामित्र आचमन कर पवित्र नदी को प्रणाम कर स्नान हेतु पानी में उतरे। उसके बाद ही राम ने जल में प्रवेश किया। लक्ष्मण जल में प्रवेश करने वाले ही थे कि उन्हें राम से थोड़ी दूर जल में कुछ हलचल दिखी।

छपाक...!

एकाएक लक्ष्मण गहरे पानी में छलाँग लगा चुके थे। राम और स्वयं गुरु विश्वामित्र लक्ष्मण के इस व्यवहार से विस्मित थे। पानी में उथलपुथल होने लगी, जैसे दो जलीय जन्तु आपस में लड़ रहे हों। लक्ष्मण अभी भी पानी की सतह से ऊपर नहीं आए थे। राम लक्ष्मण की सहायता हेतु आगे बढ़े; तभी एक बहुत विशाल मगर का सिर पानी के ऊपर आया। लक्ष्मण अभी भी ऊपर नहीं आ पाये थे...।

पर यह क्या! मगर की आँखे और भयानक जबड़े लक्ष्मण के नीलाम्बर से कसकर बँधे थे।

धीरे–धीरे मगर का पूरा शरीर पानी के बाहर आया। तदनतर लक्ष्मण उस विशालकाय मगर को अपने हाथों से सिर के ऊपर उठाए पानी की सतह पर दिखे। लक्ष्मण के मुख पर उत्साह मिश्रित मुस्कान थी।

लक्ष्मण ने मगर को नदी के किनारे पर रख दिया। मगर साँस ले रहा था, किंतु एकदम शांत पड़ा था।

"एक मल्लाह ने सत्य कहा था कि यदि मगर के दोनों जबड़े किसी साधारण वस्त्र से बाँध दिये जाएँ तो मगर मुँह ही नहीं खोल पाएगा। और यदि उसकी दोनों आँखें भी बंद कर दी जायें तो वह शीघ्र ही बस में किया जा सकता है", एकाएक गुरु और भाई की दृष्टि में उपालंभ देख लक्ष्मण सहम गए। उनकी सारी चपलता समाप्त हो गई। वह अपने कृत्य का औचित्य प्रस्तुत करते हुए बोले, "किनारे से ही मैंने

इस जलचर को देख लिया था। वह आर्य राम पर आक्रमण करने ही वाला था। परंतु वह मेरे अचानक आक्रमण से अचंभित हो गया। मैंने समय रहते ही इसकी आँखें और जबड़े अपने उत्तरीय से बांध दिये। अब यह आर्य क्या, एक नन्हें शिशु को भी हानि नहीं कर सकता" कह कर संकोच से खड़े हो गए।

गुरु मुस्कराये; राम ने कहा, "ठीक है, यह हमें कोई भी हानि नहीं कर सका। पर लक्ष्मण, अब इसको स्वतंत्र कर दो। जलचर जल में प्रसन्न रहते हैं।"

सभी के स्नान करने के बाद लक्ष्मण ने मगर को स्वतंत्र कर दिया। पाश से छूटते ही मगर बड़ी तेजी से पानी में प्रवेश कर गया।

विश्वामित्र बोले, "लोग व्यर्थ ही लक्ष्मण को राम की छाया नहीं कहते।"

लक्ष्मण कृतकृत्य हो उठे।

संध्या करने के बाद राम और लक्ष्मण गुरु विश्वामित्र के पास आकर बैठ गए। कुछ देर तक विश्वामित्र अपने नए शिष्यों को देखते रहे। थोड़ी देर बाद किसी निश्चय पर पहुँच कर वह बोले, "राम, जिस महत् कार्य के लिए मैं तुम्हें ले कर जा रहा हूँ वह आसान नहीं है। वह स्थान विश्वविजयी रावण का एक स्कंधावार है। जिस पर ताटका नाम की क्रूर यक्षिणी अपने दो उतने ही बलशाली और क्रूर पुत्र सुबाहु एवं मारीच के साथ आतंक का साम्राज्य चला रही है। उनके पास विपुल राक्षसी सेना और अति आधुनिक हथियार हैं। रावण के यह सैनिक युद्ध कला में पारंगत हैं। उन्हें रावण के इन्द्र विरोधी अभियान का गहन अनुभव हैं। ऐसे आततायियों के सम्मुख मात्र शारीरिक बल और अयोध्या में सीखी तुम्हारी शस्त्र विद्या समुचित नहीं होगी।"

"मैं चाहता हूँ कि मेरे आश्रम पहुँचने के पहले तुम राक्षसों से युद्ध करने का प्रशिक्षण प्राप्त कर लो। इस विधा में मैं तुम्हें कल प्रातः 'बला' और 'अति–बला' नाम की शक्ति प्रदान करूँगा। इन शक्तियों के प्रभाव से तुम अभूतपूर्व शक्तियों के स्वामी हो सकोगे। यदि तुमने इनका

समुचित अभ्यास कर लिया तो तुम्हें अद्‌भुत शारीरिक और मानसिक शक्ति प्राप्त होगी। इस विद्या के प्रभाव से साधारण अस्त्र शस्त्र का तुम पर प्रभाव ही नहीं होगा। तुम थकान, भूख से कभी क्लांत नहीं होगे। रात्रि में सोते समय तुम पर अचानक कोई प्रहार नहीं कर सकेगा। तुम ज्वर, संक्रमण और धोखे से दिये गए विष से भी सुरक्षित रहोगे।"

दोनों राजकुमार गुरु को प्रणाम कर शयन करने अपने कक्ष में चले गए।

अगले दिन ब्रह्म मुहूर्त में उठ कर विश्वामित्र यज्ञशाला में पहुँचे तो राम और लक्ष्मण दोनों ही पहले से निश्चित आसन पर बैठे थे। राम वेदी के सम्मुख मुख्य आसन पर और उसके थोड़ा पीछे लक्ष्मण इस तत्परता के साथ बैठे थे कि अनुष्ठान के मध्य यदि किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो लक्ष्मण तुरंत उपलब्ध करा सके।

एक बार फिर विश्वामित्र लक्ष्मण के सेवा भाव से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके।

विश्वामित्र के आते ही दोनों ने खड़े होकर गुरु को प्रणाम किया। विश्वामित्र ने स्वस्ति वचन कहते हुए राम को बैठने का संकेत किया पर राम ने आसन ग्रहण नहीं किया। वह मात्र हाथ जोड़े खड़े रहे। विश्वामित्र ने फिर उन्हें बैठने को इंगित किया पर राम वैसे ही खड़े रहे। गुरु ने प्रश्नवाचक दृष्टि से राम को देखा।

राम ने अंजलिबद्ध निवेदन किया, "गुरुदेव मुझ पर प्रसन्न हों। मेरा निवेदन है कि यह दोनों विद्याएँ मुझ अकेले को न देकर मेरे साथ लक्ष्मण को भी प्रदान करने की कृपा करें। एक भाई आपकी कृपा से संरक्षित वहीं दूसरा सर्वथा अरक्षित! यह कहाँ तक उचित है? आपने लक्ष्मण को मेरी छाया कहा है, पर मेरे लिए वह 'स्वमूर्ति आत्मनः' है। मैं उसे अपने से अलग नहीं मानता।"

लक्ष्मण बीच में ही बोल पड़े, "नहीं गुरुदेव, यदि भ्राता राम सुरक्षित हैं तो मैं स्वयमेव सुरक्षित रहूँगा। आप कृपा कर यह विद्या भ्राता राम को ही दें। वह ही इसके उचित अधिकारी हैं।"

विश्वामित्र दोनों भाइयों के प्रेम और एक दूसरे के प्रति समर्पण को देख भाव विह्वल हो गए। कुछ विलंब के बाद स्वाभाविक हो बोले, "ठीक है! मैं तुम दोनों को यह महाविद्याएँ प्रदान करूँगा। परंतु इन विद्याओं को सफल करने हेतु इनका निरंतर अभ्यास अत्यंत आवश्यक है। समुचित अभ्यास के बिना यह प्रभावी नहीं होगी।"

विश्वामित्र ने राम और लक्ष्मण दोनों को इन विद्याओं से अभिषिक्त किया। वह पूरा दिन दोनों कुमारों ने वहीं अभ्यास में बिताया। अगले दिन तीनों लोग सरयू के दक्षिणी तट के साथ–साथ पूर्वोत्तर की दिशा में बढ़ने लगे। कई योजन चलने के बाद वह सरयू और गंगा के संगम के निकट पहुँच गए।

रास्ते में जब–जब गुरु विश्राम करने को रुकते दोनों भाई गुरु के शीतल जल से चरण धोकर उन्हें विश्रांत करने के बाद अपने अभ्यास में प्रवृत्त हो जाते। विद्या और उनके अभ्यास का फल दोनों भाइयों के शरीर पर अब परिलक्षित होने लगा था। उनका शरीर पहले की अपेक्षा अधिक बलशाली हो गया था। उनमें एक विशेष ठवन आ गई थी। अब तक मार्ग में मिलने वाले लोग उन्हें ऋषिकुमार समझ कर प्रणाम करते थे। किन्तु अब इन विद्याओं के अभ्यास से निखरी उनकी देहयष्टि और उनके व्यक्तित्व से दब से जाते थे। राहगीर तबतक प्रणति में झुके रहते, जबतक वह तीनों लोग निकल नहीं जाते। गुरु यह प्रभाव देख हर्षित हो रहे थे, वहीं दोनों राजकुमार अपने में हुए इन परिवर्तनों से सर्वथा अनभिज्ञ थे।

रामानुज लक्ष्मण सदैव ही उत्साह की प्रतिमूर्ति रहे। विद्याओं को ग्रहण करने के बाद उनमें उत्साह की अभूतपूर्व वृद्धि हो गई थी। स्वयं उन्होंने भी इस परिवर्तन का अनुभव किया। उत्साहातिरेक में उन्होंने गुरु को सूचित किया, "गुरुदेव, इन विद्याओं को ग्रहण करने के बाद मैं स्वयं में अपार ऊर्जा संचार अनुभव कर रहा हूँ; यहाँ तक कि रात्रि में भी विश्राम या निद्रा लेने का मन नहीं करता।"

यह सुन कर गुरु एकाएक गंभीर होकर बोले, "यह अच्छा चिह्न

नहीं है। शरीर के लिए विश्राम भी उतना ही आवश्यक है जितना कि श्रम। तुम दोनों को योगनिद्रा के अभ्यास की आवश्यकता है।"

अगले पड़ाव पर विश्वामित्र ने राजकुमारों को शवासन एवं योगनिद्रा का अभ्यास कराया। दोनों ही अभ्यास मन और शरीर की क्लांति मिटाने के लिए प्रयुक्त होते हैं। शवासन में जहाँ मन, मस्तिष्क और शरीर सब विश्राम की स्थिति में होते हैं; वहीं योगनिद्रा में मन, शरीर और चेतन मस्तिष्क के विश्राम के साथ ही अतींद्रिय चेतना पूर्ण रूप से जाग्रत रहती है। योगनिद्रा में स्थित मनुष्य अपने पर्यावरण के बारे में चेतन रहता है। किसी भी आकस्मिकता से निबटने के लिए सदैव प्रस्तुत रहता है।

इन दोनों अभ्यासों से श्रम और विश्राम दोनों पर अधिकार हो जाने से राजकुमारों को अपनी क्षमता एवं कार्यकुशलता में अभूतपूर्व वृद्धि का आभास हुआ।

योगनिद्रा रामानुज को वनवास में कितनी सहाय हुई, भविष्य इसका साक्षी होने वाला था।

ताटका वन

तीनों पथिक अब गंगा और सरयू के संगम के निकट पहुँच गये। दो विशाल नदियों के मिलने से उत्पन्न जल के क्षोभ से उत्पन्न तुमुल स्वर अब स्पष्ट सुनाई पड़ने लगा था।

सदा जिज्ञासु रामानुज को विश्वामित्र ने बतलाया, ''पीछे से आने वाली दो अलग–अलग नदियाँ, सरयू और गंगा की धाराएँ यहाँ मिलकर एक नदी 'गंगा' के रूप में प्रवाहित होती है। जल का यह तुमुल स्वर दो बड़ी नदियों के जल के आपस में टकराने से उत्पन्न हो रहा है।''

विश्वामित्र दोनों राजकुमारों के साथ एक घाट से नाव के द्वारा गंगा को पार कर, गंगा के दक्षिणी तट पर उतर गए।

गंगा के दक्षिणी तट पर राजकुमारों को भयानक वन दिखा।

यह वन तरह–तरह के पशु–पक्षियों की आवाजों से गूँज रहा था। गुरु एक छायादार वृक्ष के नीचे रुक कर राजकुमारों से बोले, "थोड़ी ही देर में हम 'ताटका वन' में प्रविष्ट होने वाले हैं। कभी यह देश कारुष प्रदेश के नाम से जाना जाता था। परंतु जबसे रावण के निर्देशानुसार यहाँ यक्षिणी ताटका मारीच, सुबाहु नामक अपने राक्षस पुत्रों के साथ यहाँ आई है, यह शांत वन प्रदेश आतंक–वन में परिवर्तित हो गया।"

लक्ष्मण ने पूछा, "ताटका तो मात्र स्त्री है गुरुदेव! वह इतनी शक्तिशाली एवं प्रबल कैसे?"

"समय सबकुछ बदल देता है वत्स। पहले यह यक्षिणी अपने पति सुंद और पुत्र मारीच के साथ विंध्याचल के दक्षिण में निवास करती थी। मारीच की दुष्टता और अत्याचार से वनवासियों को बचाने के लिए अगस्त्य मुनि ने मारीच को दंड देने हेतु सैन्य अभियान किया। जिसमे मारीच तो भाग निकला परंतु सुंद अगस्त्य के हाथों मारा गया। पति के निधन से क्षुब्ध होकर ताटका ऋषि को मारने दौड़ी। ऋषि ने स्त्री समझ इसका संहार नहीं किया, केवल मरणासन्न अवस्था में छोड़ दिया। तब ताटका वहाँ से मारीच और सुबाहु के साथ वहाँ से भाग निकली और वैदिक संस्कृति के घनघोर शत्रु माल्यवान की आश्रित हुई। माल्यवान, जो रावण की माँ केकसी का पिता होने से रावण का नाना था, ने ताटका को अपने दौहित्र रावण की शरण में भेज दिया।"

"युक्तिवान् रावण इन तीनों की शक्ति और सामर्थ्य से भली भाँति परिचित था। उसने मारीच और सुबाहु को 'मामा' कह कर स्वागत किया। कुछ अंतराल के बाद रावण ने इन तीनों माँ–बेटों को आतंक फैलाने के लिए इस स्कंधावार की नेत्री बना कर यहाँ भेज दिया। तबसे ताटका अपने पति की मृत्यु का बदला यहाँ के निरीह वनवासियों से लेती हुई अबला से प्रबला बनी फिरती है।"

"संभावना है कि हम जैसे ही इसके क्षेत्र में प्रवेश करेंगे वह हम पर आक्रमण करेगी। अतः हमें सावधानी से वन में प्रवेश करना होगा। और राम, तुम ताटका को देखते ही उस पर अमोघ बाण मार कर

उसका अंत कर देना। ताटका अपने प्रतिद्वंद्वियों को दूसरा मौका नहीं देती।" कह कर विश्वामित्र चलने को उद्यत हुए ही थे कि उनको राम के चेहरे पर असमंजस के भाव परिलक्षित हुए। परंतु कुछ सोच कर चल पड़े।

तीनों लोग अभी दो योजन ही चले होंगे की वातावरण में एकाएक नीरवता पसर गई। लगा जैसे सिंह ऐसे हिंस्र और बलशाली पशु भी किसी बड़े आक्रांता के भय से मौन हो गए।

विश्वामित्र भी ठिठक गए। उनके स्वर में सतर्कता थी। वे बोले, "राम, सावधान! ताटका यहीं कहीं पास में ही है। वह हम पर दृष्टि रख कर आक्रमण की नीति तैयार कर रही है। जैसे वह सामने आए, उस पर प्राणान्तक बाण छोड़ना।"

"पर गुरुदेव, ताड़का स्त्री है। एक स्त्री का वध करना उचित होगा क्या?" राम के स्वर में दुविधा थी।

"हाँ, यह नीति विरुद्ध है। परंतु क्षत्रिय राजा को प्रजा के हित में ऐसे नीति विरुद्ध और पापकर्म करने ही होंगे। यही उसका दायित्व है। प्रजा राजा को इसलिए देवतुल्य पूजती है कि आततायी से संरक्षण करते समय राजा नीति–अनीति और पाप–पुण्य का विचार त्याग मात्र जनरक्षण हेतु कर्म करे।"

राम ने आश्वस्त होकर प्रत्यंचा को टंकार दी। इससे इतनी महान् ध्वनि उत्पन्न हुई कि ताटका क्रोधित होकर अपनी ओट त्याग सामने प्रकट हो गई। हाथी के समान लंबी–चौड़ी देहयष्टि, हाथ में खड्ग लिए वह विकराल लग रही थी। उसने बाईं ओर से आक्रमण किया। आक्रमण इतना अप्रत्याशित था कि राम को घूम कर ताटका का सामना करने का समय ही नहीं मिला। फिर भी, बाईं ओर चल रहे लक्ष्मण ने तत्काल बाण से उसका एक हाथ इस आशय के साथ काट दिया कि सम्भवतः ताटका भयभीत होकर भाग जाय। पर वह रुकी नहीं। वह दूने वेग से उनकी ओर झपटी। लक्ष्मण ने दूसरा हाथ भी काट डाला। परंतु ताटका धूमकेतु की भाँति निकट आती गई। तबतक

राम घूम कर लक्ष्मण को पीछे कर, ताटका के सम्मुख आ गए। राम ने एक भयानक बाण उसके सीने में मारा। बाण ताटका की छाती बेधता हुआ निकल गया। बाण के संवेग से ताटका का शरीर हवा में उछला और धरती पर इतने वेग से गिरा कि धरती में धँस गया। भयानक शब्द के साथ वातावरण में धूल ही धूल व्याप्त हो गई।

इस धुंध से विश्वामित्र का स्वर गूँजा "देखा, यदि एक क्षण का भी विलंब होता तो यह हमको क्षति पहुँचा सकती थी।"

राजकुमारों ने गुरु को प्रणाम किया। तीनों आश्रम की ओर चल पड़े।

ताटका के मारे जाने की सूचना सिद्धाश्रम के वासियों तक पहुँच चुकी थी। आश्रम पहुँचने पर संवासियों ने ऋषि और कुमारों का अभूतपूर्व स्वागत किया। विश्वामित्र कुमारों को हाथ–मुँह धोकर विश्राम करने को कह स्वयं वीरकेतु के साथ मंत्रणा कक्ष में चले गए।

वीरकेतु ने बताया कि वनवासियों की गुप्त टुकड़ी अब पूर्ण रूप से प्रशिक्षित होकर, युद्ध होने की स्थिति में प्रतिरोध करने में सक्षम हो चुकी है। आश्रम व वन्य ग्रामों के चारों ओर खाईं बना कर उन्हे सूखी लकड़ियों और पत्तों से ढक दिया गया है।

विश्वामित्र ने अगले दिन से यज्ञ अनुष्ठान प्रारम्भ करने के निर्देश दिये।

पौ फटने के साथ ही अग्निहोत्र प्रारम्भ हो गया। मन्त्रों के उच्चारण के साथ जलती हवन सामग्री की सुगंध वातावरण में फैलने लगी। यज्ञ समाप्ति पर अपना हिस्सा पाने की प्रतीक्षा में पक्षी भी पेड़ों पर चहचहाने लगे। आश्रम में वल्कल वस्त्रों में दो किशोरों के अलावा सब कुछ पहले जैसा लग रहा था।

हवन की सुगंध से राक्षसों को धर्मकृत्य प्रारम्भ होने का आभास हो जाता था और वह उसका विध्वंस करने आश्रम पर चढ़ दौड़ते थे। परंतु आज वैसा नहीं हुआ। ताटका के मारे जाने से वह सशंकित हो

उठे थे। वह अनुमान कर रहे थे कि ताटका को मारने के लिए क्या विश्वामित्र फिर से विश्वरथ बन गए!

इसलिए इस बार वह पूरी सैन्य तैयारी के साथ व्यूहबद्ध होकर आक्रमण करने वाले थे। वह जानते थे कि विश्वामित्र यज्ञ में दीक्षित होने के बाद वेदी नहीं त्यागेंगे। अतः उन्होंने कुछ विलंब से आक्रमण करने का निश्चय किया।

आश्रम परिसर में गूँजती मंत्र ध्वनि एकाएक राक्षसों के भीषण रव से दब गईं। आश्रम संवासियों के चेहरे पर चिंता की रेखाएँ प्रकट होने लगीं। परंतु मंत्रोच्चार होता रहा, यज्ञ निर्बाध रूप से चलता रहा। राक्षस सेना ने पूरे आश्रम को घेर लिया। आश्रमवासी राक्षसों के आक्रमण की प्रतीक्षा कर रहे थे परंतु राक्षस सैनिक अपने स्थान पर ही रुके रहे। उनके बीच से उनके नायक ने आश्रम में प्रवेश किया। लोगों ने नायक को उसके विशाल काया से पहचाना। यह क्रूरता की प्रतिमूर्ति मारीच था। वह निहत्था ही जनसाधारण को भयाक्रांत कर देता था। आज वह पूरी तरह से सशस्त्र था। आश्रमवासियों के शरीर में झुरझुरी आ गई। राक्षस सेना बाहर सन्नद्ध खड़ी थी। मारीच ने खड्ग उठा कर चेतावनी भरी गर्जना में कहा, "मैं ताटका–सुंद का पुत्र राक्षसराज रावण की ओर से सभी आश्रमवासियों को सूचित करता हूँ कि यह प्रदेश अब राक्षसराज रावण के आधिपत्य में आ गया है। आज और अभी से इस क्षेत्र में किसी भी प्रकार का यज्ञादि वैदिक धार्मिक कृत्य करने का पूर्ण रूप से निषेध है। जो भी ऐसा करता हुआ पाया जाएगा उसे कुलसहित नष्ट कर दिया जाएगा। यह यज्ञ भी समाप्त करो वरना कुछ ही पलों में यहाँ कोई जीवित नहीं बचेगा।" तभी उसकी आँखों कि कोर से दृष्टि क्षेत्र में दो बलिष्ठ और तेजवान् क्षत्रिय कुमार प्रकट हुए। वह उसे तत्काल समझ गया इन्हीं दो ने उसकी माँ की हत्या की होगी। उसकी क्रोधाग्नि को आहुति मिली।

"आक्रमण" कह कर वह राम की ओर झपटा। राक्षस सेना ने अभी पहला पग ही बढ़ाया कि मारीच के सीने में एक बगैर फल का बाण आकर लगा। कोई भी यह नहीं देख पाया कि कब राम ने धनुष

पर बाण संधान कर कब मारीच पर छोड़ा। इस बिजली सी फुर्ती से जहाँ सैनिक चकित थे वहीं, मारीच को बाण के आघात से प्राणांतक पीड़ा हुई। वह खड़ा नहीं रह सका और छाती पकड़ कर आर्तनाद करता हुआ वहाँ से भाग गया। मारीच के भागते ही उसके सैनिक भी अपने अस्त्र–शस्त्र छोड़ कर भाग गए।

यज्ञ निर्बाध रूप से चलता रहा।

मारीच के पलायन से भयभीत सेना ने एक बार फिर से संगठित होकर सिद्धाश्रम पर आक्रमण किया। इस बार राक्षसों ने बगैर किसी चेतावनी के आक्रमण कर दिया। उनका नेतृत्व दुर्दांत गैंडे के समान बल और काया वाला बलशाली सुबाहु कर रहा था। सुबाहु अपने अंगरक्षकों के साथ मुख्य द्वार से प्रविष्ट हुआ, वहीं राक्षसी सेना आश्रम के चारो ओर की बाड़ को पार कर आश्रम पर चढ़ दौड़ी। सामूहिक आक्रमण बहुत ही भयानक था। किन्तु तब ही...

वीरकेतु ने एक जलती हुई मशाल बाड़ की ओर फेकी। बाड़ की सूखी लकड़ी और पत्तों से में एकाएक अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी। तमाम राक्षस उसमें भुन गए। राक्षस सेना आग के डर से पीछे हटी और आश्रम के मुख्य द्वार की ओर झपटी, जहाँ सुबाहु राम पर निरंतर शूल, मूसल और बाणों की झड़ी लगाये था। राम एक ऊँचे चबूतरे पर खड़े सुबाहु के सभी प्रयास बड़ी आसानी से विफल कर रहे थे। वहीं लक्ष्मण राम के पीछे अर्धचंद्राकार वृत्त में घूम–घूम कर राक्षस सेना के राम पर किए प्रहारों को काट कर राक्षसों को मृत्यु की भेंट कर रहे थे।

तभी सुबाहु ने एक दिव्य बाण का संधान किया... पर यह क्या जब तक वह दिव्य बाण छोड़े, राम का एक बाण सुबाहु की छाती को विदीर्ण करता पीछे धरती में धँस गया। सुबाहु का शरीर गिरते ही राक्षस सेना एक बार फिर भाग खड़ी हुई।

वीरकेतु ने देखा, लक्ष्मण अपने उत्तरीय से राम के श्रम बिन्दु पोछ रहे थे, वहीं राम लक्ष्मण को देख रहे थे कि छोटे भाई को कोई घाव तो नहीं आया।

वीरकेतु ने आश्रमवासियों को आश्रम परिसर को रक्त, मांस अवशेषों को हटा कर, साफ और शुद्ध करने का निर्देश दिया। वह स्वयं चुने हुए कुशल साथियों के साथ आश्रम की बाड़ के पुनर्निर्माण में लग गया।

संध्या होते विश्वामित्र का अनुष्ठान पूर्ण हुआ।

"बहुत दिनों के बाद सिद्धाश्रम में कोई अनुष्ठान निर्विघ्न सम्पन्न हुआ" विश्वामित्र प्रसन्न होते हुए बोले "और राम यह तुम्हारे शौर्य से ही सम्भव हो सका।" फिर वीरकेतु से प्रश्न किया, "क्यों वीरकेतु, इस कार्य हेतु राम को चयनित करने का मेरा निर्णय सही सिद्ध हुआ न? और राम इसका पूर्ण श्रेय तुम्हें जाता है।"

"मैं कौशिक विश्वामित्र आज तुम्हें आशीष देता हूँ कि तुम आर्यावर्त का इतिहास और भूगोल दोनों ही नए सिरे से स्थापित करने में सफल होगे और भविष्य में इक्ष्वाकु वंश तुम्हारे नाम से जाना जाएगा।"

राम–लक्ष्मण ने गुरु को प्रणाम किया।

मंत्रणा कक्ष में वीरकेतु ने बताया कि आश्रम के चारों ओर वृक्षों के ऊपर पट्टियों में छिपे वनवासियों के अतिरिक्त बल की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। मारीच को छोड़, सुबाहु सहित राक्षसों की लगभग पूरी सेना नष्ट हो चुकी है।

विश्वामित्र "मारीच को छोड़कर क्यों?"

"आर्य राम ने उसे चेतावनी देने के लिए पहले बगैर फल का बाण मारा था। वह उसे ही नहीं झेल पाया और चीत्कार करता हुआ भाग गया।"

"यदि मारीच जीवित है तो यह अभियान अभी शेष है। राक्षस रात्रि में सबसे प्रबल होते हैं। निश्चित रूप से आज रात को आश्रम पर आक्रमण होगा। इसके लिए हमें तैयार रहना होगा। वीरकेतु, इस बार तुम्हारे अतिरिक्त बल को भी कार्यवाही करनी होगी। यदि कोई भी

जीवित बचा तो रावण को सूचना मिल जाएगी, और वह क्रोध में आकर इस क्षेत्र पर आक्रमण कर सकता है और इसके लिए हम अभी तैयार नहीं हैं।" विश्वामित्र के स्वर में पर्याप्त चिंता थी।

हम चाहें या न चाहें, भगवान् अंशुमालि कि गति रुकती नहीं। वह अपनी निश्चित गति से चलते ही रहते हैं। सिद्धाश्रम में भी इसका अपवाद नहीं हुआ। गोधूलि वेला के पीले प्रकाश को धकेल अब संध्या का साँवला वर्ण वनप्रभाग में छाने लगा था। हालाँकि, ऊँचे वृक्षों की चोटियों में सूर्य की सुनहली किरणे इस प्रकार अभी भी चिपकी थीं, मानो इस पुण्य भूमि को वह छोड़ना ही नहीं चाहतीं। वातावरण में पक्षियों की चहचाहट बढ़ गई थी।

चिड़ियों का शोर सुन कर लक्ष्मण ने वीरकेतु से कहा, "वीरकेतु, देखो ! इस समय बसेरा लेने के लिए उपयुक्त और सुगम स्थान पर अधिकार करने हेतु पक्षियों में भी लड़ाई हो रही है। यही कारण है कि चिड़ियों का स्वर शोर में परिवर्तित हो गया। यह मूक पक्षी बसेरे हेतु स्थान के लिए आपस में झगड़ रहे हैं। सोचो, मानव जो इनसे कहीं ज्यादा महत्वाकांक्षी है, उसकी अधिक से अधिक भूमि अधिग्रहीत करने की अदम्य लालसा भी अप्राकृतिक नहीं है।"

"भोजन और भूमि निमित्त यह संघर्ष ही सम्भवतः 'जीवन संग्राम' है। कोई चाहे या न चाहे इस जीवन संग्राम से नहीं बच सकता। इसीलिए गुरुदेव कहते हैं निर्बल होना सबसे दुःखद है।"

वीरकेतु लक्ष्मण से प्रभावित होता हुआ विचार कर रहा था कि हमेशा चुलबुले और उत्साह से भरे रामानुज दार्शनिक मनन भी करते रहते हैं!

बीती संध्या, जब से दोनों राजकुमार आश्रम पधारे, सारा सिद्धाश्रम सैन्य प्रबंधन में व्यस्त रहा। यज्ञ की तैयारी, सुबह का भीषण संग्राम व उसके बाद की व्यवस्था ने सभी को थका डाला था। क्लांत शरीर को निद्रा के अंक में ही विश्रांति मिलती है। यही कारण है कि रात्रि सारे वन पर छा कर, अब आश्रम वासियों और वनवासी योद्धाओं

की आँखों में भी छाने लगी थी। परंतु राक्षसों के आक्रमण का स्मरण कर वह फिर से चैतन्य हो जाते। मगर कितनी देर के लिए! थोड़ी ही देर में पलकें फिर मुँदने लगतीं।

उधर सुबाहु की सेना की संहार से बची टुकड़ी तेजी से प्राण बचाने हेतु दक्षिण की ओर प्रयाण कर रही थी; तभी एक सैनिक जोर से बोला, "आर्य, मारीच कहाँ हैं?"

इस प्रश्न ने सभी को चौंका दिया। नायक ने चिंतित स्वर में कहा, "कहीं आर्य मारीच को ऋषिकुमारों ने आश्रम में ही बंदी तो नहीं बना लिया?"

"यदि ऐसा है तो उन्हें बंधक छोड़ कर पलायन करने के अपराध में, लंका पहुँचने से पहले ही दंडक वन में खर और दूषण ही हमें मृत्यु दंड दे देंगे।"

निश्चित हुआ कि रात्रि के अंधेरे में जब आश्रम में सभी थक कर सोये होंगे हम उन पर अचानक धावा मारकर सभी का वध कर आर्य को मुक्त करा लें। क्योंकि रात्रि में तो राक्षस ही अधिक प्रबल होते हैं।

आधी रात बीते, सभी राक्षस निश्चित व्यूह में आश्रम के निकट पहुँचे। चारों ओर निस्तब्धता छाई थी। कहीं–कहीं टहनी पर किसी पक्षी की टहनी की पकड़ कमजोर होने से वह एकाएक चौंक कर बोल उठता तो सभी चिड़ियाँ कलरव करने लगतीं। परंतु पक्षियों के इस शोर से भी आश्रमवासियों की नींद नहीं खुल रही थी। अतएव सब निशाचर आश्वस्त होकर आश्रम के निकट तक बगैर किसी प्रतिरोध के पहुँच गए। आश्रम के चारो ओर की खाईं में अग्नि के अंगारे अभी भी बुझे नहीं थे। अतः आक्रमण के लिए केवल आश्रम का मुख्य मार्ग ही बचता था। उस पर कोई प्रहरी नहीं दृष्टिगोचर हो रहा था। तय हुआ सूची–व्यूह के रूप में मुख्य द्वार से ही आक्रमण किया जाय।

आश्रम के द्वार से प्रवेश करते ही नायक को एक वीरासन में स्थित एक शुभ्र प्रतिमा दिखी। वह मन ही मन हँसा। यह ऋषिगण भी

प्रतीकों में बहुत विश्वास करते हैं। इसी कारण यह मूर्ति पूजा में भी श्रद्धा रखते हैं। देखो, उसने सोचा, एक प्रतिमा को पहरेदार के रूप में स्थापित कर मूर्ति से अपनी रक्षा की आकांक्षा रखते हैं। खैर, हमारा क्या, हमारा तो कार्य सुगम हो गया।

उसने आक्रमण का संकेत दिया।

सभी राक्षस तेजी से झपटे। पर यह क्या...प्रतिमा धनुष लेकर खड़ी हो गई। पलक झपकते ही आगे की पंक्ति के सभी राक्षस मारे गए। उनकी हृदय विदारक चीख से जहाँ राक्षस सावधान हुए, वहीं आश्रमवासी भी युद्ध में सन्नद्ध हो गए। आश्रम की ओर से भयानक बाण वर्षा होने लगी। राक्षस प्राण बचाने पीछे की ओर भागे। तभी वृक्षों से कूद कर सशस्त्र वन वासी उनका संहार करने लगे। दो पाटों के बीच फँस कर राक्षस पीस दिये गए। कोई भी राक्षस बचकर नहीं जा सका।

गुरुदेव भी कुटिया से बाहर आए। उन्होंने देखा उनके पक्ष के सभी योद्धा जीवित थे। राम और लक्ष्मण अपना धनुष उतार चुके थे। मशाल के प्रकाश में राक्षस शवों को पहचानने के क्रम में मारीच का शव फिर भी नहीं मिला।

"तुम्हारी करुणा की वजह से एक बड़ा आततायी बच गया, राम। यह अच्छा नहीं हुआ। ईश्वर ही जानता है कि भविष्य में वह तुम्हारे लिया क्या विपत्ति ढाएगा। राम, तुम अब दुष्टों के संधान पर आ गए। ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे।"

तभी वीरकेतु ने आकर अपराधभाव में हाथ जोड़कर गुरु से कहा, "गुरुदेव, आज की यह विजय रामानुज के द्वारा ही सम्भव हो सकी।"

"रामानुज?" गुरु के स्वर में आश्चर्य था।

"हाँ, गुरुदेव, हम सभी थकान से सो चुके थे। मात्र लक्ष्मण ही वीरासन में जाग्रत थे। इनके धनुष की टंकार और मरते हुए राक्षसों की चीत्कार से ही हम सब सक्रिय हो सके।"

"तुम जाग रहे थे लक्ष्मण?"

"गुरुदेव मैं योगनिद्रा में था।"

"वीरासन में योगनिद्रा! तुम कभी–कभी मुझे चमत्कृत कर देते हो लक्ष्मण !", गुरु की वाणी में स्नेह था।

राम अनुराग से लक्ष्मण की ओर देख रहे थे।

दक्षिणावर्त

भरतखंड में विंध्याचल के अधिकांश दक्षिणी भाग में कोई सुगठित सभ्यता नहीं थी। अधिकतर लोग वन–सम्पदा पर ही आश्रित थे। ग्राम या नगर व्यवस्था भी उस अंचल में विकसित नहीं हुई थी, जिनसे वन–सम्पदा का विनिमय कर वनवासी अपने जीवन स्तर में वृद्धि कर सकें। वनवासी छोटे–छोटे कबीलों में बस्तियाँ बना कर रहते थे। हिंस्र पशुओं का भय इन्हें कबीलों में रहने के लिए विवश करता था। जल, आखेट, मधु, फल तथा कंदमूल तक ही इनकी आवश्यकताएँ सीमित थी।

विंध्याचल से सुदूर दक्षिण में जल से घिरे भूभाग को पौराणिक काल में तीन ओर से जल से घिरे होने के कारण, द्रविड़ प्रदेश (द्रव=जल) कहलाता था। इस द्रविड़ प्रदेश के दक्षिण–पूर्वी क्षेत्र में दैत्य राजा बलि द्वारा स्थापित राज्य था जो काफी विकसित और शक्तिशाली था। दैत्य संस्कृति का होते हुए भी राजा बलि और उसकी संतान देवलोक की वैदिक संस्कृति के नायक विष्णु से बहुत प्रभावित थे। वहीं द्रविड़ प्रदेश के पश्चिमी भाग में रक्ष संस्कृति का पक्षधर शंबर का विस्तृत राज्य था।

शंबर बहुत ही वीर, प्रतापी और महत्वाकांक्षी था। शंबर की पत्नी समुद्र की गोद में स्थित स्वर्णमयी लंका की राजमहिषी मंदोदरी की बहन थी। रावण और शंबर की मिली जुली सैन्य शक्ति का सामना करने की सामर्थ्य रखने वाला भरतखंड ही नहीं, पूरे जंबुद्वीप में कोई नहीं था।

परंतु रावण अपना साम्राज्य किसी से बाँटना नहीं चाहता था। उसे अनुमान था कि यदि वह शंबर से मैत्री करेगा तो वह शंबर का कनिष्ठ सहयोगी बन कर रह जाएगा।

किन्तु रावण और द्वितीय स्थान...किसी का अनुगामी...! यह विचार ही रावण को क्रोधित कर देता था। अतः वह स्वयं एकाकी हिमालय विजय को निकल पड़ा और विजयी होकर लौटा।

शंबर अब विंध्याचल और उसके उत्तर में स्थित आर्यावर्त में भी अपनी पैठ बनाना चाहता था। अतः सोची समझी कूटनीति के अंतर्गत, शंबर के सैनिक छद्म वेश में विंध्य की तलहटी में बसे वनवासियों के कबीलों में मिल गए। शंबर के यह सैनिक विंध्य के उत्तर में स्थित आर्यावर्त के वैभवशाली नगर और ग्रामों में रात को घुस कर लूटपाट करते और सुरक्षित अपने स्थान में वापस लौट आते। धीरे–धीरे वनवासियों के रूप में शंबर के सैनिक लूटपाट के लिए आर्यावर्त में काफी दूर तक आने लगे। आर्यावर्त के नगर और ग्राम इन आक्रांताओं द्वारा नष्ट होने लगे।

यह वह समय था जब ऋषि अगस्त्य वैदिक ज्ञान और सैन्य विद्या के लिए पूरे आर्यावर्त में सर्वश्रेष्ठ थे।

उन्होंने आर्यावर्त को इन दस्युओ से बचाने के लिए विंध्याचल के दक्षिण में अपने गुरुकुल स्थापित करने का निश्चय किया। उस काल में अगस्त्य का यह निर्णय बहुत संकटप्रद था। परंतु संकटों के सम्मुख सीना तान कर खड़े होने वाले ही इतिहास रचते हैं, अस्तु...

अगस्त्य ऋषि ने काफी प्रयास के बाद 'दक्षिणावर्त' (विंध्य के दक्षिण में स्थित दुर्गम दंडक वन) को वैदिक ऋषि, मुनियों के लिए निरापद बना कर इतिहास रच दिया। जगह–जगह इनके शिष्यों ने आश्रम खोले। इन आश्रमों में स्थानीय वनवासियों को शिक्षित और दीक्षित कर कृषि और वाणिज्य की नींव डाली। अगस्त्य मुनि के आश्रमों से होकर वनवासियों की वन सम्पदा आर्यावर्त पहुँचने लगी। इस प्रकार अगस्त्य ऋषि के साहस भरे अभियान से आर्यावर्त का,

अलंघ्य विंध्य पर्वत के पार दक्षिण से प्रथम बार वाणिज्यिक संपर्क स्थापित हुआ।

अगस्त्य इतने से ही संतुष्ट होने वाले नहीं थे। द्रविड़ प्रदेश में शंबर साम्राज्य के कारण अब भी दंडाकारण्य में स्थापित वैदिक आश्रम, पूर्ण रूप से निरापद नहीं थे। इसी असुरक्षा की भावना से कूटनीतिज्ञ अगस्त्य ने आर्यावर्त के प्रसिद्ध क्षत्रिय राजा विश्वरथ को अपने आश्रमों को देखने हेतु आमंत्रित किया। विश्वरथ अगस्त्य की महिमा से परिचित थे। वह बड़े उत्साह और सम्मान से आकर अगस्त्य मुनि से मिले।

औपचारिक शिष्टाचार के बाद तापस अगस्त्य अपने कूटनीतिक रूप में प्रकट हुए। उन्होंने विश्वरथ के उत्साह और पराक्रम को एक दिशा दी। उन्होंने विश्वरथ को बताया कि द्रविड़ देश में राजा बलि आर्यावर्त या देवलोक का विरोधी नहीं है। वहीं शंबर का विजय स्वप्न आर्यावर्त के हित में नहीं है। अतएव आर्यावर्त की रक्षा का दायित्व युवा विश्वरथ पर ही है।

अगस्त्य मुनि की मंत्रणा के अनुसार विश्वरथ ने शंबर की नीति का शंबर के विरुद्ध प्रयोग करने का निर्णय लिया। आर्यावर्त के सैनिक धीरे–धीरे दंडक वन के आश्रमों में ब्रह्मचारियों के रूप में सम्मिलित होने लगे। प्रत्येक आश्रम में युद्ध के लिए अस्त्र–शस्त्र, भोजन व घायलों के उपचार की पूरी व्यवस्था होने लगी। समय आने पर विश्वरथ ने एकाएक शंबर पर आक्रमण कर दिया।

शंबर भी उस समय आर्यावर्त की ओर कूच करने की तैयारी में था। उसने काफी सैनिक अपनी राजधानी में एकत्र कर रखे थे। उनके अस्त्र–शस्त्र, भोजन का समुचित व्यवस्था हो ही रही थी, कि विश्वरथ का आक्रमण हो गया। आक्रमण आकस्मिक और अप्रत्याशित था। आक्रमण की पहली ही लहर में शंबर की रक्षा पंक्ति छिन्न–भिन्न हो गई। शस्त्रागार से सैनिकों को अभी समुचित अस्त्र भी वितरित नहीं हो सके थे। बाहर से आए हुए शंबर के तमाम राक्षस सैनिकों के पास

समुचित अस्त्र न होने के कारण विश्वरथ की सेना ने उन्हें गाजर मूली की तरह काट डाला।

विश्वरथ के इस आकस्मिक आक्रमण से नष्ट हुई सेना से बौखलाए शंबर ने बहुत ही क्रूर निर्णय लिया। उसने अपनी बची हुई सेना के साथ रात में शिविरों में सो रहे विश्वरथ के सैनिको पर आक्रमण कर दिया। विश्वरथ के काफी सैनिक निद्रा में ही मार दिये गए। जिन्होंने जाग कर युद्ध करने का प्रयास किया वह भी मारे गए। बचे खुचे सैनिक भाग गए। शिविर में आग लगा दी गई।

विश्वरथ सोते में ही बंदी हो गया। उसे शंबर के कारावास में डाल दिया गया।

निश्चित था कि विश्वरथ को मृत्यदंड दिया जाएगा।

विश्वरथ की गौरवगाथा से सभी परिचित थे। शूरवीर विश्वरथ को देखने के लिए राक्षस नागरों की भीड़ उमड़ पड़ी। तरुणाई की उत्सुकता सबसे तीव्र होती है। इसी उत्सुकता के चलते शंबर की नवयुवती पुत्री शांबरी, जो स्वयं अनिंद्य सुन्दरी थी, विश्वरथ को देखने पहुँची।

शांबरी ने विश्वरथ को देखा तो ठगी सी रह गई। तपे ताँबे सा गौर वर्ण, उन्नत भाल, दैदीप्य ललाट। उस पर भयानक त्रिपुंड। चेहरा इतना ओजपूर्ण कि दो पल से अधिक आँखें नहीं टिकतीं। बेड़ियों से जकड़ा बलिष्ठ शरीर। फटे वस्त्रों से झाँकती फौलादी मांसपेशियाँ... उफ! शांबरी आगे नहीं देख सकी। आँखों को जोर से बंद करके उसने अपने धड़कते दिल को वश में किया। और तत्क्षण अपने महल लौट पड़ी।

शांबरी का अनुमान था कि उसके अछूते यौवन की यह प्रतिक्रिया उसके स्वयं के शरीर तक ही सीमित रही। परंतु पाप और प्रेम छुपता नहीं। निकट खड़ी सखी से राजकुमारी की यह दशा गुप्त न रह सकी। किन्तु सखी मौन रही।

महल में शांत होने के बाद शांबरी ने अपनी सहेली से पूछा, "राजन् इस अद्‌भुत वीर राजकुमार के साथ क्या करेंगे?"

"विषैले सर्प की कुंडली और दंश से बचने के बाद मनुष्य जो सर्प के साथ करता है, वही विश्वरथ के साथ भी होगा।"

"सखी, क्या ऐसा नहीं हो सकता कि विश्वरथ किसी प्रकार बच जाए। अभी उसकी वय ही क्या है?"

इस प्रश्न ने सखी के विश्वास को दृढ़ कर दिया कि उसकी राजकुमारी वास्तव में अपने पिता के शत्रु के मोहजाल में फंस चुकी है। अब निश्चय ही अपने अनुराग के चलते विश्वरथ के साथ राजकुमारी भी मारी जाएगी और यदि... यदि राजकुमारी अपने प्रेमी को पाने में सफल होती है तो राजा शंबर का अंत होना निश्चित है।

"हाँ, एक उपाय है" सखी ने कहा, "ऋषि अगस्त्य!"

"ऋषि अगस्त्य!" राजकुमारी का चेहरा पीला पड़ गया। द्रविड़ प्रदेश में ऋषि अगस्त का नाम हर किसी के मन में भय का संचार करने को काफी था।

"हाँ, अगस्त्य ऋषि! यदि उनको सूचना हो सके तो– अब वही विश्वरथ की रक्षा कर सकते हैं।"

राजघरानों में महिलाओं का शासन अलग से चलता है। विशेषकर यदि वह महिला सुंदरी हो और राजकुमारी की अभिन्न सहेली।

अगस्त्य तक सूचना पहुँची। सूचना के साथ ही विश्वरथ के कारागार का नक्शा और आक्रमण के उपयुक्त समय का विस्तार से उल्लेख भी पहुँच गया।

अमावस्या की घोर अंधेरी रात्रि में आज इस टोली का नेतृत्व स्वयं अगस्त्य कर रहे थे। आखिर, उन्हीं के परामर्श पर ही विश्वरथ ने प्रयाण किया था। इस बार सोते हुए शंबर के सैनिकों को अगस्त्य के सैनिकों ने शीघ्र काबू कर लिया। जब अगस्त्य शंबर के कारागार में विश्वरथ के पास पहुँचे तो शांबरी उनकी पथ प्रदर्शक थी।

विश्वरथ तो अपने प्राणों की आशा त्याग चुका था। वह एक वीर क्षत्रिय के भाँति प्राणोत्सर्ग के लिए मन बना चुका था।

कारागार का द्वार खुला सैनिक वेश में अगस्त्य ने आ कर उसकी बेड़ियों को खड्ग के एक ही वार से काट दिया। बंधन मुक्त होते ही विश्वरथ अगस्त्य के चरणों में झुक गए। अगस्त्य ने उन्हें गले लगाया। कारागार के द्वार से निकलते ही विश्वरथ को वह अनिंद्य सुंदरी दिखी। इतनी संकट की घड़ी में भी शांबरी के सौंदर्य से अभिभूत होने से नहीं बच सके, विश्वरथ।

अगस्त्य ने परिचय कराया "विश्वरथ यह सम्राट शंबर की पुत्री और राज्य की राजकुमारी शांबरी है। राजकुमारी की कृपा से ही विश्वरथ हम तुम तक पहुँचा सके।"

विश्वरथ और अगस्त्य की आँखों में एक साथ कूटनीति चमकी। विश्वरथ ने कहा, "गुरुदेव, ऐसी परिस्थिति में राजकुमारी का यहाँ रुकना कल्याणकारी नहीं होगा। इन्हें भी हमारे साथ चलना होगा।"

कारागार के बाहर आकर विश्वरथ एक बार फिर रुके। बोले, "गुरुदेव, मेरे अस्त्र तो वहीं रह गए। पता नहीं शंबर ने उन्हें कहाँ छिपाया होगा?" कह कर उसने शांबरी की ओर देखा।

"मैं जानती हूँ आर्य, मैं आपका मार्ग दर्शन कर सकती हूँ।"

"नहीं राजकुमारी, आपका जाना निरापद नहीं होगा। क्या आपकी सखी मेरा मार्ग दर्शन कर सकेगी?"

राजकुमारी अगस्त्य के साथ आश्रम की सुरक्षा में पहुँच गई। वहीं विश्वरथ पौ फटने के कुछ समय पहले आश्रम पहुँचा। उसके कंधे पर उसके सभी अस्त्र मौजूद थे।

उसके शूल पर शंबर का कटा हुआ सिर शोभा पा रहा था।

शंबर की मृत्यु से आर्यावर्त का भविष्य सुरक्षित हो गया था; किन्तु साथ ही महत्वाकांक्षी रावण को भी जीवनदान मिल गया।

रावण ने शंबर के साथ रहकर विश्वविजय को पूर्णता देने के बजाय उसने शंबर को ही 'युद्धं देहि' कहकर द्वंद्व हेतु ललकारा। शंबर रावण को आसानी से परास्त कर उसका वध करने वाला था कि, शंबर की पत्नी ने अपनी बहन मंदोदरी की दुहाई देते हुए रावण को प्राण दान देने की प्रार्थना की। शंबर ने रावण की हत्या न करके उसे एक गहरे कूप में बंदी बना लिया।

रावण जिसने अपनी साम्राज्य लोलुपता में अपने सगे बहनोई विद्युज्जिह्व की हत्या कर दी थी; वही रावण अपने साढू से प्राण दान पाकर बंदी बना था।

शंबर की मृत्यु के बाद वह स्वतंत्र होकर लंका चला गया।

इतिहासकार कह सकते हैं कि यदि विश्वरथ ने रावण का भी नाश कर दिया होता तो सम्भवतः राम को अवतार ही न लेना पड़ता।

इतिहासकार का अपने अध्ययन कक्ष में बैठकर मात्र पुस्तक ज्ञान के विवेक से निर्णय देना सरल है कि उस समय यदि ऐसा किया गया होता तो परिणाम अधिक अच्छा होता।

वह भूल जाता है कि उस समय के नायकों ने उन परिस्थितियों में जो उत्तमोत्तम निर्णय लिये जा सकते थे, लिया होगा। कल्पना करें विश्वरथ का मात्र राजकुमारी की सहेली के साथ अकेले शंबर के कक्ष में प्रविष्ट कर शंबर का वध करना कितनी शूरता का कृत्य रहा होगा। यदि विश्वरथ रावण को ढूँढ़ने में पड़ता तो उसे स्वयं बंदी होने का खतरा था। संभावना यह भी हो सकती है कि रावण के कैदी होने के तथ्य से विश्वरथ सर्वथा अनभिज्ञ रहा हो।

----------x------x------x----------

विश्वरथ के विश्वामित्र बनने की सूचना द्रविड़ प्रदेश पहुँच चुकी थी। दंडक क्षेत्र, जो अब रावण के अधीन था, विश्वरथ के क्षात्र–धर्म से विरत होने से उत्साहित और अधिक उग्र हो उठा। उस प्रांत का शासन रावण ने अपने समान बलशाली खर और दूषण को

सौंप रखा था। खर और दूषण के चर अगस्त्य मुनि के आश्रम से सुदूर स्थित ऋषियों के आश्रम पर आक्रमण करते और उनकी हत्या कर देते। ऋषियों की सामूहिक हत्यायें दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रहीं थीं।

अगस्त्य ऋषि भी अब वृद्ध हो चले थे। उन्हें एक बार फिर से एक नए विश्वरथ की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। तभी सूचना मिली कि विश्वामित्र के आश्रम में विघ्न डालने वाले राक्षसों को अयोध्या के दो किशोर राजकुमारों ने कुछ दिनों में ही नाश कर डाला। इस सूचना से अगस्त्य को संबल मिला। किन्तु कहाँ दंडकारण्य और कहाँ सैकड़ों योजन दूर अयोध्या। वह राजकुमार यहाँ तक कैसे और क्यों कर आएंगे?

फिर भी अगस्त्य ने एक बार फिर विश्वामित्र पर विश्वास किया। उन्होंने उनके पास संदेश भेजा। अगस्त्य का संदेश सुनकर विश्वामित्र गंभीर हो गए। उनकी भृकुटी पर चिंता के साथ ही आक्रोश की रेखाएँ उभर आईं। परंतु शीघ्र ही उन्होंने आक्रोश का शमन कर लिया– ब्रह्मर्षि को रजोगुण से दूर रह कर दृष्टा की भाँति जगत् कल्याण का चिंतन और साधन करना चाहिए।

उन्होंने संदेशवाहक के सम्मुख ही राम और लक्ष्मण को बुला लिया। संदेशवाहक ने एक बार फिर दंडक वन के ऋषि–मुनियों की पीड़ा और सामूहिक संहार की गाथा का राजकुमारों के सामने वर्णन किया। दक्षिण प्रदेश में जनसाधारण और ऋषि–मुनियों पर अत्याचार का समाचार पाकर दोनों राजकुमार अकुला उठे। राम जहाँ गंभीरता से गुरु के मन्तव्य की प्रतीक्षा कर रहे थे, वहीं लक्ष्मण सिद्धाश्रम का सा दुष्ट–दलन–कांड दंडक वन में भी दुहराने को उद्यत हो गए।

विश्वामित्र लक्ष्मण की इस प्रतिक्रिया पर मन ही मन प्रसन्न हुए, परंतु फिर भी लक्ष्मण को शांत करते हुए बोले, "नहीं, वत्स, किसी भी सूचना पर पूर्ण मनन करने के उपरांत ही उस पर प्रतिक्रिया करनी चाहिए। दंडकवन यहाँ से बहुत दूर है। हम एकदम से वहाँ के लिए

प्रस्थान नहीं कर सकते। और फिर मैं तुम्हें तुम्हारे पिता से मात्र सिद्धाश्रम को निरापद कराने के निमित्त लाया था। तुम्हें एक बार मैं पुनः दशरथ को सौप दूँ, तदनन्तर ही कुछ आगे विचार किया जा सकेगा।"

फिर संदेश वाहक से उन्मुख हो बोले, "गुरु अगस्त्य को मेरा प्रणाम कहना। कहना दक्षिण देश की सूचना मैं रखता हूँ, परंतु परिस्थितियाँ इतनी गंभीर होंगी, इसका अनुमान मुझे नहीं था। उनको कहना कि आर्यावर्त में शीघ्र ही नया सूर्योदय होने वाला है। उसके प्रकाश से, यदि गुरु अगस्त्य का आशीर्वाद रहा, तो विंध्य के दक्षिण का 'दक्षिणावर्त' भी शीघ्र आलोकित होगा।"

अगस्त्य विश्वामित्र का संदेश पाकर आश्वस्त हुए। उन्होंने समस्त दूर–दूर तक फैले आश्रमों को निर्देश भेजा कि छोटे–छोटे आश्रमों को बंद कर सभी बड़े आश्रमों में एकत्र हों। अधिक संख्या होने से सुरक्षा बढ़ जाती है। इसके साथ ही उन्होंने सैन्य प्रशिक्षण पर बल देने का आदेश भी दिया।

----------x------x------x----------

उस रात्रि विश्वामित्र ने एक प्रहर रात्रि बीतने के बाद राम को अपनी कुटिया में बुलाया, "राम, जिस सूर्य का आश्वासन मैंने अगस्त्य ऋषि को दिया है वह सूर्य तुम ही हो।"

राम गंभीर मुद्रा में खड़े थे। गुरु की प्रश्नवाचक मुद्रा देख वे बोले, "जैसी आज्ञा गुरुदेव !"

राम कितना मितभाषी है!

"परंतु इसके लिए तुम्हें सूर्य की तरह तपना भी होगा। जानते हो सूर्य का एक विशेषण 'तापन' भी है। सूर्य के ताप से मात्र दुष्ट और शत्रु ही नहीं तपते। समय आने पर इस आँच से अपने प्रिय और हितैषी भी झुलस सकते हैं। और तुम समझ सकते हो अपनों की जलन। इस जलन की पीड़ा उनसे अधिक स्वयं तुमको होगी...इसका अनुमान है तुम्हें?"

इस बार राम ने सीधे गुरु की आँखों में देखा और गंभीर स्वर में कहा, "मैं अनुमान कर सकता हूँ, गुरुदेव। आपकी आज्ञा पालन हेतु प्रस्तुत भी हूँ" राम के स्वर में मेघों गंभीर गर्जना और आत्मविश्वास था।

विश्वामित्र प्रसन्नता से हँस पड़े "नहीं, राम, तुम्हारा यह निर्णय जनहित में होना चाहिए, गुरु की आज्ञापालन में नहीं।" विश्वामित्र ने राम को एक बार फिर कसौटी पर कसा।

"इतने दिनों में मुझे भान हो चुका है कि गुरुदेव का हर मंतव्य जनहित में ही होता है।"

"फिर भी मैं स्वयं तुम्हारा स्वतंत्र निर्णय जानना चाहता हूँ।"

राम विश्वामित्र के सम्मुख घुटनों पर बैठ दोनों हाथों से चरणों का स्पर्श कर बोले, "मुझे इन गुरुचरणों की सौगंध, लोकरंजन एवं लोक–कल्याण के लिए स्नेह और सुख क्या, मैं अपना अर्द्धांग भी काटने को प्रस्तुत रहूँगा।"

राम की कठोर प्रतिज्ञा सुन कर विश्वामित्र थोड़ी देर के लिए स्तब्ध रह गए। फिर उन्होंने उठ कर राम को गले लगा लिया और गद्‌गद स्वर में बोले, "राम! तुमने बहुत कठिन प्रतिज्ञा ली है। ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे।"

गुरु से आशीर्वाद पाकर राम जब अपनी कुटिया में वापस लौटे तो लक्ष्मण उनकी प्रतीक्षा में जग रहे थे। उन्हें अनुमान था कि गुरुदेव ने दक्षिणावर्त प्रयाण के विमर्श हेतु ही राम को बुलाया होगा। राम के आने पर लक्ष्मण ने उठ कर राम का स्वागत किया। राम कुछ देर लक्ष्मण के कंधे पर हाथ रख खड़े होकर बड़े स्नेह से लक्ष्मण को देखते रहे। फिर एकाएक लक्ष्मण ने अनुभव किया कि राम की आँखों में गंभीरता आ गई है। वे कहीं दूर...भविष्य की ओर देख रही थीं।

राम की यह आकृति देख लक्ष्मण के मन में एकाएक उत्साह का ऐसा उत्स फूटा, कि रात भर वह सो नहीं सके। बारंबार उनके मन में राम की वह भव्य आकृति आ रही थी। लक्ष्मण के मन में दृढ़ विश्वास

हो चला था कि राम अब युग–पुरुष होने के मार्ग पर आरूढ़ हो चुके हैं और रामानुज होने के कारण उनका स्वयं का भी दायित्व बढ़ गया।

यह निश्चय कर लक्ष्मण गहरी निद्रा में समा गए।

मिथिला

अगस्त्य के संदेशवाहक की विदा और राम से गुप्त मंत्रणा की भोर, सिद्धाश्रम में संतों की एक टोली का आगमन हुआ। उसका गंतव्य राजा जनक की नगरी मिथिला थी। टोली विश्रांति और जल–पान के लिए विश्वामित्र आश्रम में रुकी। टोली के मुखिया से ज्ञात हुआ कि राजा जनक ने अपनी अनिंद्य सुंदरी कन्या सीता के स्वयंवर की घोषणा की है। पूरे आर्यावर्त के ही नहीं आर्यावर्त के पश्चिम और दक्षिण स्थित राज्यों के राजा और राजकुमार मिथिला पधारने लगे हैं। यह टोली भी उत्सव, आनंद और दान–दक्षिणा की लालसा में मिथिला जा रही थी।

जनक की पुत्री सीता के स्वयंवर की सूचना पाते ही ऋषि विश्वामित्र ने अपने संवासियों के साथ राम और लक्ष्मण को भी आयोजन में सम्मिलित होने का प्रस्ताव रखा। सिद्धाश्रम में मिथिला प्रयाण की तैयारियाँ होने लगीं।

एकाएक मिथिला प्रयाण? ऋषि तो वैभव की चमक दमक से हमेशा के लिए दूर हो चुके थे। अयोध्या का वैभव भी उनके लिए किसलय दल पर जल के समान कोई प्रभाव नहीं डाल सका। वही ऋषि मिथिला का वैभव देखने को इतने आतुर कैसे हो उठे? राम के मन में रह–रह कर यह घुमड़ रहा था। अंत में राम यह विचार कर संतुष्ट हो गए कि कल रात्रि की गुप्त मंत्रणा की प्रतिपूर्ति हेतु यह विश्वामित्र का पहला पग था।

वहीं लक्ष्मण एक अत्यंत वैभवशाली और सुंदर नगरी देखने के अवसर मिलने से उत्साहित थे। सदैव जिज्ञासु लक्ष्मण मिथिला पहुँचने के पहले ही वह मिथिला के बारे में सबकुछ जानने को उत्सुक थे। यह मान कर कि प्रयाण की तैयारी इस समय सभी की प्राथमिकता है उन्होंने अपनी उत्सुकता का कुछ समय के लिए शमन कर लिया।

प्रभात फूटते ही दो क्षत्रिय कुमारों के साथ यह साधु–संतो की टोली मिथिला को चल पड़ी। रास्ते में जितने भी वनवासियों के गाँव पड़ते, वह सब मार्ग में आकर संतो का स्वागत करते, गोरस, कंद–मूल आदि का उपहार देते। विश्वामित्र के लिए यह मार्ग नया नहीं था। वह बहुधा इस मार्ग से 'विशाला' या उसके भी पूर्व में स्थित मिथिला तक यात्रा कर सभी राजाओं को एक सूत्र में पिरोने का प्रयास करते रहते थे। परंतु जो उत्साह, सेवा भाव और समर्पण वनवासियों में इस बार परिलक्षित हो रहा था वह सर्वथा अद्‌भुत और नवीन था। इसका कारण सोच कर, विश्वामित्र मन ही मन मुस्कराए। वनवासियों को ज्ञात था कि सिद्धाश्रम में फैली आतंक की ज्वाला शीघ्र ही उन तक पहुँचने वाली थी। परन्तु वह सब विश्वामित्र की कृपा से उस आसन्न संकट से बच सके। इसलिए उनकी इस बार की यात्रा में वनवासियों की भक्ति में कृतज्ञता का भी पुट था।

एक दिन की यात्रा के बाद वह शोण नदी के तट पर पहुँच गए। शोण की गहराई तो बहुत अधिक नहीं होती है परंतु उसका का प्रवाह बहुत ही तीव्र था। वह रात्रि सबने शोण के किनारे ही बिताई।

संध्या, सूक्ष्म यज्ञ के उपरांत हविष्यान्न का भोग के बाद रात्रि में विश्वामित्र ने लक्ष्मण की उत्सुकता को शान्त करने के लिए मिथिला का इतिहास बताया।

"लक्ष्मण, इस समय समस्त आर्यावर्त में अयोध्या के बाद मिथिला ही सबसे बड़ा राज्य है। यह राज्य उत्तर में हिमालय, दक्षिण में गंगा, पूर्व में कोसी तथा पश्चिम में गंडक नदियों के बीच के विस्तृत भाग में फैला है। तीन तरफ नदियाँ और एक तरफ हिमालय होने के कारण यह क्षेत्र बहुत ही उपजाऊ है। नदियों के कारण मिथिला का व्यापार पूरब और पश्चिम दोनों ओर आसानी विस्तार पाता था। इस कारण यहाँ का वाणिज्य काफी उन्नत है। ऋषियों का निवास हिमालय के निकट होने के कारण यहाँ वैदिक संस्कृति का प्रभाव भी काफी परिलक्षित होता है। यहाँ के वर्तमान राजा जनक इतने

आध्यात्मिक हैं कि ऋषि–गण इन्हें विदेह के नाम से पुकारते हैं। राजा जनक का कुशध्वज नाम का एक छोटा भाई भी है।"

"राजा जनक वाणिज्य..." इसके पहले की गुरु कुछ आगे बताएं लक्ष्मण ने पूछ ही लिया, "गुरुदेव, मिथिला को मिथिला क्यों कहा जाता है?"

विश्वामित्र हल्के से हँसे, "इस क्षेत्र के महान् राजा निमि के पुत्र राजा मिथ बहुत ही पराक्रमी थे। उनके नाम पर ही यह राज्य मिथिला कहलाता है। राजा मिथ के जनक नाम के पुत्र भी अपने पिता और पितामह के समान वीर थे। उन्होंने मिथिला में धर्मपूर्वक राज्य किया। तब से आजतक मिथिला के राज सिंहासन पर बैठने वाले हर सम्राट को जनक ही कहा जाता है। मिथिला के वर्तमान राजा जनक का वास्तविक नाम सीरध्वज है।"

"और हाँ, राजा सीरध्वज जनक के पास पारिवारिक धरोहर के रूप में एक विशाल धनुष है। कहते हैं कि इस प्रकार के मात्र दो धनुष ही हैं। एक राजा जनक के पास 'शिव धनुष' और दूसरा महर्षि परशुराम के पास प्रसिद्ध 'वैष्णव–धनुष'। यह दोनों ही धनुष अद्वितीय हैं। यह बात भी सत्य है कि इन दोनों धनुषों को किसी भी साधारण योद्धा द्वारा प्रत्यंचा चढ़ाना तो दूर मात्र उठाना ही दुष्कर होगा। परंतु यदि कोई इसकी प्रत्यंचा चढ़ाने में सफल हो जाए तो उसे जीतने वाला धरती पर कोई नहीं होगा। जनक भी अब वृद्ध हो चले हैं। इनके बाद दुर्भाग्य से यदि यह धनुष किसी दुष्ट के हाथ पड़ गया तो सज्जनों का विनाश निश्चित है। लंकेश रावण की बढ़ती हुई शक्ति, आर्यावर्त में उसके सैनिक स्कंधावार, इस समय आर्यावर्त के भविष्य के लिए मनीषियों कि चिंता का विषय बना है। ऐसे में राजा जनक इस दिव्य धनुष के लिए कोई योग्य धनुर्धर की तलाश में हैं।"

"राजा जनक की एक अयोनिजा धर्म–पुत्री सीता है। सीता बहुत ही योग्य, शस्त्र और शास्त्रों में पारंगत होने के साथ ही अनिंद्य सुंदरी भी है। सीता की सुंदरता की चर्चा से आकर्षित अनेक राजाओं

ने कई बार मिथिला पर आक्रमण किया। किन्तु उन्हें परास्त होना पड़ा। पराजय से क्षुब्ध राजाओं ने एक बार सामूहिक रूप से जनक को पराभूत करना चाहा। तब जनक को मजबूरी में शिव–धनुष का संधान करना पड़ा। शिव–धनुष की प्रचंडता देख कोई भी राजा तब से मिथिला की ओर देखने का भी साहस नहीं करता। किन्तु कब तक? जनक अब चौथेपन में हैं उनके और उनके भाई के भी केवल कन्याएँ ही हैं। ऐसे में जनक का धनुष और सुंदर सीता के बारे में चिंतित होना अस्वाभाविक नहीं है।"

"परंतु अब ज्ञात हुआ है कि मिथिला के राजगुरु शतानन्द के विमर्श से जनक को दोनों समस्याओं का एक ही समाधान प्राप्त हो गया। जनक ने अपनी पुत्री सीता को वीर्य–शुल्का घोषित कर उसका स्वयंवर आयोजित किया है।"

'अनिंद्य सुंदरी का वीर्य–शुल्का स्वयंवर'! सभी स्तब्ध हो गए। इसका तात्पर्य हुआ कि कोई भी अपने को सर्वश्रेष्ठ पराक्रमी सिद्ध कर सीता का वरण कर सकता है। इसका सीधा अर्थ है कि, भोली–भाली सीता किसी भी शूर या क्रूर पराक्रमवान् के पल्ले बँध सकती है। इस विवाह में पुत्री सीता क्या, स्वयं राजा जनक की भी आपत्ति–अनापत्ति का भी प्रश्न नहीं।

विश्वामित्र कुछ समय के लिए शांत रहे। जैसे वह समझ रहे थे कि सबके मन में क्या चल रहा है।

"जनक ने पराक्रम सिद्ध करने की एक कसौटी रखी है– जो वीर मिथिला में रखे शिव–धनुष को उठा कर उसकी प्रत्यंचा–संधान करेगा, जनकदुलारी उसी का वरण करेगी।"

मुनि मंडली के मन में एक ही नाम कौंधा–

'रावण'!

रावण से अधिक पराक्रमी इस समय कौन है। किंवदंती थी कि रावण ने अपने आराध्य शंकर समेत सम्पूर्ण कैलाश को अपनी भुजाओं

पर संभाल प्रसिद्ध 'शिव–तांडव स्तोत्र' का गान किया! उसके लिए शिव–धनुष का उत्तोलन कुछ दुष्कर न होगा। अतः यदि रावण स्वयंवर में आता है तो...

जहाँ सब मुनि–मंडली इस संभावना से आतंकित थे, किन्तु मुखर रूप में नाम लेने में भी भयभीत थी; राम शांत मुद्रा में गुरु की ओर देख रहे थे। वहीं वीरवर लक्ष्मण विख्यात शिव–धनुष के दर्शन को उत्सुक हो उठे। नवीनता, दिव्य भव्यता लक्ष्मण को सदैव आकर्षित और रोमांचित करती।

शोण नदी के किनारे वन प्रदेश में संध्या अपने पति दिवाकर के पीछे जाने की जल्दी में थी। आखिर दिनभर तपित क्लांत 'तापन' की विश्रांति भी तो संध्या का ही दायित्व था। संध्या के पीछे–पीछे निशा भी भूमण्डल के आलिंगन हेतु प्रस्तुत हुई। तारापति के आगमन की प्रतीक्षा में आकाश धवल पुष्प पथ नीहारिका बिछाने लगा। तारों के मद्धिम प्रकाश में रजनीचर जीव–जंतु भोजन संधान में व्यस्त हो गए। धरती के ऊपर स्वयं प्रदीप्त तारों से प्रतीत होता था मानो आकाश से सहस्राक्ष इन्द्र धरती को निरख रहा हो।

संध्या आदि के उपरांत निस दिन की भाँति मुनि मंडली और दोनों कुमार ऋषि विश्वामित्र के सम्मुख चर्चा के लिए उपस्थित हो गए। हमेशा की भाँति प्रश्नकर्ता लक्ष्मण से ही चर्चा प्रारम्भ हुई।

"गुरुदेव, आपने बताया कि शोण की गहराई बहुत अधिक नहीं है, फिर भी इसका प्रवाह सभी नदियों से तीक्ष्ण क्यों?" लक्ष्मण ने हाथ जोड़कर विनम्रता से जिज्ञासा की।

विश्वामित्र के चेहरे पर वात्सल्य मिश्रित स्मित हास्य रेख उभरी, "लक्ष्मण, तुम जानते हो कि आर्यावर्त की लगभग सभी नदियाँ हिमालय से ही निकली हैं। यह नदियाँ धरती प्राकृतिक ढाल का अनुसरण करती हुई सागर की ओर गतिमान हैं। इस क्षेत्र की लगभग सभी नदियाँ सीधे सागर में न जा कर, पहले गंगा में मिलकर ही सागर तक पहुंचती हैं। शोण नदी के उद्गम से गंगा–शोण संगम तक धरती

के ढाल का झुकाव बहुत तीव्र है। इस कारण इसमे जल प्रवाह का वेग अन्य नदियों से अधिक है। ऊपर से जल का स्तर सदैव सम रहता है। इसलिए दिखाई पड़ने वाले सम जल स्तर से नदी की गहराई अथवा तीव्र ढाल का अनुमान नहीं लग पाता।"

फिर थोड़ा विश्राम ले कर बोले, "शोण के प्रवाह के माध्यम से तुम्हें जीवन के एक दर्शन पर भी मनन कर सकते हो। जल की गति को प्रवाह कहते हैं। प्रवाहित जल ही कल्याणकारी होता है। स्थिर जल समयान्तर में सड़ कर दूषित होने लगता है। जल तभी गतिमान होगा जब उसके तल में असमता हो। इसी प्रकार मानव को भी प्रगति के लिए जीवन में विषमता होना अनिवार्य है। इतिहास रचने वाले सभी नायकों का जीवन विषमताओं एवं कठिनाइयों से भरा रहा है। वहीं जो और जितने भी साम्राज्य व सभ्यतायें समाप्त हुईं, उनके पीछे केवल एक ही कारण था– उनकी निष्क्रियता! इसी विचार से मनीषियों ने 'चरैवेति–चरैवेति' का संदेश दिया।"

फिर राम की ओर देखते हुए कहा, "अतएव जीवन में सदैव गतिवान एवं कर्मशील बने रहना चाहिए।"

----------x------x------x----------

अगले दिन प्रयाण के पहले राम ने गुरु को प्रणाम कर पूछा, "देव ! शोण का प्रवाह तो अति तीव्र है, तब हम इसे कैसे पार करेंगे?"

"राम, मैं तुम्हें वन और बीहड़ों से होते हुए इस उद्देश्य से ले चल रहा हूँ कि तुम इस प्रकार के क्षेत्रों से परिचित हो सको। निर्जन में दिशा का संज्ञान कर सको। नदी, नाले और पहाड़ कब कैसे और कहाँ से पार किए जाते हैं, इसका तुम्हें अनुभव होना चाहिए। तुम्हारी प्रतिज्ञा से तुम्हारा आने वाला जीवन इन्हीं दुर्गम स्थलों में व्यतीत होगा। इसलिए तुम्हें इनका अभ्यस्त होना चाहिए।"

लक्ष्मण तत्परता से बोल उठे, "तो क्या हम मिथिला में शिव–धनुष के दर्शनोपरांत दक्षिणापथ को प्रयाण करने वाले हैं?"

विश्वामित्र को लक्ष्मण के उत्साह पर प्रसन्नता हुई। "नहीं,

अभी वह समय नहीं आया। अभी तुम्हें प्राकृतिक अनुभव और अनुकूलन के अलावा राजधर्म, राजनीति, और कूटनीति सीखनी होगी। इसके बाद ही समय आने पर दक्षिण प्रयाण करना होगा। उस अवधि में मैं तुम्हारे साथ नहीं होऊँगा। अतः यह सब तुम्हें एक पूर्वनिश्चित योजनाबद्ध तरीके से करना होगा। किन्तु सबसे पहले आर्यावर्त के महत्वपूर्ण राजाओं का सहयोग प्राप्त करना होगा। आर्यावर्त में सब कुछ अनुकूल रहने पर ही तुम दक्षिणा पथ की ओर जाने का विचार कर सकते हो। हमारी अयोध्या से सिद्धाश्रम, सिद्धाश्रम से सुदूर पूर्व मिथिला तक की इस यात्रा का उद्देश्य भी यही है।"

लक्ष्मण के चेहरे पर प्रसन्नतापूर्ण आश्चर्य उभरा, वहीं राम हमेशा की भाँति शांत रहे; जैसे उन्हे इन तथ्यों का पूर्वानुमान हो।

"किन्तु सर्वप्रथम तुम्हें नीतियों का ज्ञान होना परम आवश्यक है, जो तुम्हें अयोध्या में ही प्राप्त करना है।"

"यह ज्ञान हमे वशिष्ठ ही देंगे!" लक्ष्मण का यह संवाद आधा प्रश्न और आधा अनुमान था।

"वशिष्ठ से तुम्हें केवल धर्मनीति सीखनी है। राजनीति तुम्हें सम्राट दशरथ से सीखनी है..."

"और कूटनीति?" लक्ष्मण की जिज्ञासा ने गुरु–वाक्य पूरा होने के पहले ही फूट पड़ी। वह व्यग्र हो उठे कि वशिष्ठ और दशरथ के अलावा कौन है अयोध्या में जो उन्हें कूटनीति का ज्ञान दे सकता है।

"कूटनीति का ज्ञान तुम्हें अपनी माँ कैकेयी से प्राप्त करना होगा। वह बुद्धिमती है।" विश्वामित्र ने लक्ष्मण की आँखों में देखते हुए एक–एक शब्द पर जोर देकर कहा।

"तो क्या, हमारी अन्य माताएँ बुद्धिहीन हैं?" लक्ष्मण के स्वर में आश्चर्य था।

कौशिक हँसे। "नहीं, ऐसा नहीं है रामानुज, तात्कालिनी अर्थात तुरंत निर्णय लेने में सक्षम मानसिक शक्ति को 'बुद्धि' कहते हैं वहीं भविष्य का अनुमान लगाने वाली शक्ति को 'मति' कहते हैं। यह दोनों

मानसिक विलक्षणतायें कैकेयी में भरपूर हैं। इसलिए मैंने कैकेयी को 'बुद्धिमती' कहा।"

लक्ष्मण गंभीर मुद्रा में विचारलीन हो गए।

अगले दिन शोण तट पर चलते हुए विश्वामित्र बोले, "किसी भी नदी को उसी स्थान से पार करना चाहिए जहाँ पर नदी के पाट की चौड़ाई सबसे कम हो और प्रवाह की तीव्रता भी अधिक न हो। यदि तुम्हें प्रवाह की तीव्रता और नदी की चौड़ाई में से एक को चुनना हो तो जहाँ तक हो सके, तीव्र प्रवाह से बचना चाहिए।"

चलते–चलते मुनिमंडली उस स्थान पर पहुँची जहाँ से कुछ दूर पर ही शोण पूरी व्याकुलता से गंगा में समा रहा था। दोनों महान् नदियाँ तीर के फल की भाँति (>) एक दूसरे से मिल रही थीं। विश्वामित्र ने सबको इंगित किया, "देखो, जब शोण का जल तेजी से गंगा में विलीन होता है, तब कुछ समय के लिए गंगा का प्रवाह रुक जाता है परंतु कुछ क्षणों के बाद गंगा का जल जोर लगाता है तब शोण का प्रवाह थोड़े समय के लिए रुक जाता है। हमें इस स्थान से थोड़ा ऊपर शोण को पार करना होगा। हमारी नाव उसी समय शोण को शीघ्रता से पार करने का प्रयास करेगी जब गंगा के दबाव से शोण का प्रवाह थम सा जाएगा। नाविक अधिकतर ऐसे स्थानों पर ही घाट का निर्माण करते हैं।"

यह सूचना दशरथ कुमारों के निमित्त थी जिसे वह भलीभाँति ग्रहण कर रहे थे।

गंगावतरण

शोण नदी पार कर, आधा दिन चलने के बाद सब लोग पुण्य–सलिला गंगा के दक्षिणी किनारे पर पहुँचे। दिन ढलने लगा था, सूर्य भी मुनियों की टोली की भाँति थका हुआ अस्ताचल की ओर प्रवृत्त था। चिड़ियाँ बसेरे के लिए नीड़ को उन्मुख थीं। अतः सबने रात्रि जाह्नवी तट पर विश्राम का विचार किया।

पुण्य सलिला भागीरथी का पाट, अपने में शोण को आत्मसात करने के बाद काफी विस्तरित हो चुका था। शोण के तेज प्रवाह की वजह से मंथर गामिनी गंगा का बहाव भी कुछ तीव्र हो गया था। जलप्रवाह की कलकल ध्वनि रात्रि की नीरवता को हल्के–हल्के थाप सी देती प्रतीत हो रही थी। निद्रा के लिए यह स्वर लोरी के समान और योगियों की समाधि के लिए वही स्वर दैवी नाद था।

मुनिमंडली के बीच रामानुज की जिज्ञासु वाणी ने रात्रि की नीरवता भंग की । "गुरुदेव, कहते हैं कि पुण्यसलिला गंगा सदैव से धरतीतल पर प्रवाहमान नहीं थीं। वह कब और कैसे पृथ्वी पर अवतरित हुईं? इन्हें त्रिपथगा क्यों कहते हैं?" फिर कुछ सकुचाते हुए कहा, "सुना है कि इसमें हमारे पूर्वजों का भी योगदान रहा!"

"सुमित्रानंदन, गंगा से तुम्हारे इक्ष्वाकु वंश का बहुत ही गहरा सम्बन्ध है। यह सत्य है कि यह दिव्य सरिता हमेशा से आर्यावर्त में प्रवाहमान नहीं थी। इसे लाने का श्रेय तुम्हारे पूर्वज सम्राट् भगीरथ को जाता है। कहते हैं कि जब गंगा भूलोक में नहीं थीं तो सागर का जल स्तर पृथ्वी के तटों को आज की भाँति छूता हुआ नहीं था। जंबुद्वीप सीमाओं के बाद एक बड़ा गर्त था जिसे पाताल के नाम से जाना जाता था। इसी गर्त में काफी नीचे सागर लहलहाता था, जिसे रसातल कहते थे।"

"इक्ष्वाकु वंश परंपरा में एक राजा सगर हुए, जिनके एक पत्नी से एक असमंज और दूसरी से साठ हजार पुत्र हुए। यह साठ हजार पुत्र अपने क्रोधी और उग्र व्यवहार के कारण पाताल लोक में कपिल ऋषि के श्राप से भस्म होकर राख हो गए। असमंज के पुत्र अंशुमान अपने चाचाओं को खोजते जब पाताल पहुँचे तो, उनकी भस्मि को देखकर बहुत दुखी हुए। पाताल में उन्हें चाचाओं के तर्पण हेतु जल नहीं उपलब्ध हुआ। ज्ञानियों ने बताया कि हिमालय की ज्येष्ठ पुत्री गंगा यदि पृथ्वी पर अवतरित होकर इन सगरपुत्रों की भस्मि को आप्लावित करें, तब ही इन वीरों की मुक्ति हो सकेगी।"

"कहते हैं आदिकाल में दैत्य राज बलि से वामन देव ने तीन पग स्थान माँगा तब एक पग से भूलोक का मापन कर दूसरा चरण उन्होंने द्युलोक की ओर उठाया। वह चरण इतना विशाल था कि ब्रह्मलोक में केवल 'श्री हरि' के चरणों का अंगूठा ही समा सका। आदि–पिता ब्रह्मदेव ने भगवान् के उस अंगुष्ठ–नख प्रक्षालन कर के उस पवित्र जल को अपने कमंडलु में संग्रहीत कर लिया। हरि के चरण–नख का यह प्रक्षालित जल तीनों लोकों में परम पावन माना गया। यह पवित्र जल ही मूल गंगाजल है। यही कारण है कि गंगा को 'नख–निर्गता' भी कहा जाता है।"

"कालांतर में अंशुमान के पौत्र और राजा दिलीप के पुत्र भगीरथ ने ब्रह्मा को प्रसन्न कर स्वर्ग से गंगा को प्राप्त किया। स्वर्ग से गिरती हुई जल राशि के प्रबल वेग से धरती को बचाने हेतु भगवान् शंकर ने अपने शिर पर धारण किया और उनके वेग को कम करते हुए उसकी एक धारा को हिमालय में छोड़ा। किंवदंती है कि वहाँ से गंगा भगीरथ के रथ का अनुसरण करती हुई हिमालय से भारत के दक्षिण–पूर्व भाग में राजा सगर के पुत्रों की भस्म को आप्लावित कर रसातल में स्थित समुद्र में जा मिलीं। गंगा की इस अपार जलराशि के निरंतर समुद्र में गिरने से समुद्र तट भी ऊपर उठने लगा। राजा सगर के पुत्रों के अवशेषों को अपने में समाहित करने के कारण समुद्र 'सागर' कहलाया; वहीं भगीरथ की आराधना से प्रसन्न हो कर भगीरथ के रथ की अनुगमन करने से गंगा 'भागीरथी' कहलाईं।"

"ब्रह्मा के कमंडलु से निकली गंगा की धारा पहले आकाश से उतरी, फिर पृथ्वी पर प्रवाहित हुईं, और अंत में पाताल में विलीन हुईं आकाश, पृथ्वी, और पाताल तीनों जगह विचरण करने के कारण इन्हें 'त्रिपथगा' भी कहा गया।"

"इस प्रकार लक्ष्मण, गंगा और सागर दोनों ही तुम्हारे वंश परंपरा के अथक प्रयास और पराक्रम की गाथा कह रहे हैं, और अनंत काल तक कहेंगे। लोक–कल्याण में किया गया पराक्रम सद्गुणी

और यशोवर्धक होता है, वहीं विश्व–विजय आदि में किया पराक्रम रजोगुणी और क्रूरता की श्रेणी में गण्य है।"

लक्ष्मण के चेहरे पर संतोष और कुल–दर्प कि आभा छा गई, वहीं राम गंभीर मुद्रा में मौन बैठे गुरु को देखते रहे। विश्वामित्र ने राम के उभरते प्रश्न भाव को पहचान कर कहा, "क्या बात है राम तुम्हारे चेहरे पर लक्ष्मण जैसी प्रसन्नता नहीं है, तुम्हारे मन में कुछ चल रहा है?"

"क्षमा करें गुरुदेव, क्या आप स्वयं इस पौराणिक कथा में पूर्ण रूप से विश्वास करते हैं। क्या इसमें कविगण कल्पनाजनित अतिशयोक्ति से, महाराज भगीरथ के अथक प्रयास को मात्र तपस्या कहकर, उनके पौरुष का अवमूल्यन तो नहीं कर रहे हैं। इस काव्याश्रित कथा से इतर इसका व्यावहारिक पक्ष भी होगा।"

विश्वामित्र भाव–विभोर होते हुए बोले, "राम तुम्हारा क्रियात्मक विवेक ही तुम्हारा सबसे बड़ा सद्गुण है। किसी घटना को दैवी कृपा मानकर उस पर विश्वास करना तुम्हारे चरित्र में नहीं है। तुम लोक–गाथाओं से भी शिक्षा ग्रहण करते हो। यह सीखने की जिज्ञासा व्यक्तित्व को सबल करती है, आत्मविश्वास को दृढ़ करती है।"

"तुम्हारे गुरु वशिष्ठ ने तुम्हें जल–प्रलय और हिम–प्रलय के बारे में अवश्य बताया होगा। जिस प्रकार जल–प्रलय में पृथ्वी का तापमान लगातार बढ़ने के कारण, अति–वृष्टि से समुद्र का जल स्तर ऊपर उठने लगता है। धीरे–धीरे सारी पृथ्वी जल से आप्लावित हो जाती है। उसी प्रकार हिम–प्रलय में वातावरण का तापमान लगातार गिरने से, सारी सृष्टि हिमाच्छादित हो जाती है। हिम–प्रलय में समुद्र का जल भी हिम रूप में पर्वतों और पृथ्वी के दोनों ध्रुवों पर एकत्र हो जाता है। समुद्र का तल पृथ्वी से काफी नीचे रसातल को चला जाता है।"

"कालांतर जब पृथ्वी का तापमान बढ़ने लगता है तब पर्वतों की बर्फ पिघलने लगती है। इस बढ़े तापमान से जम्बुद्वीप और भरतखंड

में महान् हिमालय भी पिघलना प्रारम्भ कर देता है। हिमालय से पिघला यह जल पर्वत की तलहटी में एकत्र होने लगता है। कोई निश्चित जल निकासी न होने के कारण हिमालय की तलहटी में पूरब से पश्चिम एक विशाल दलदल का निर्माण हो जाता है। इस तलहटी के किनारे बसे लोग व उनके पशु–धन इस दलदल में फँस कर मृत्यु को प्राप्त हो जाते थे। दलदल वैसे भी अनेक रोगों का कारण होता है।"

"मेरे विचार से राजा सगर इसी कालखंड में हुए होंगे। राजा सगर की चार पीढ़ियाँ इस दलदल से छुटकारा प्राप्त करने में प्रयासरत रहीं किन्तु कोई निश्चित हल नहीं निकाल सका। अंत में राजा भगीरथ इस महत्कार्य में सफल हुए।"

"भगीरथ ने सम्भवतः हिमालय से पिघले जल की मुख्य धारा से भरतखंड के प्राकृतिक मैदानी ढाल के अनुरूप एक विशाल कुल्या का निर्माण किया जिससे दलदल के जल को समुद्र तक पहुँचने का सुगम मार्ग मिल गया।"

"राम! तुमने ध्यान दिया होगा कि दर्पण पर गिरी तमाम बूँदें धीरे–धीरे एक दूसरे से मिलकर एक धार बना लेती हैं। ठीक उसी प्रकार, भगीरथ द्वारा बनाई इस विशाल कुल्या के किनारे बसे दलदल से भी अनेक जलधाराएँ इस विशाल कुल्या में मिलने लगीं। आज तुम यमुना, सरयू, शोण, गण्डकी आदि जो विशाल नदियाँ गंगा में समाहित होती देख रहे हो वह सम्भवतः इसी प्रक्रिया का फल है।"

"यह भी अनुमान किया जा सकता है कि भगीरथ के पूर्वजों ने यह प्रयास प्रारम्भ किया हो जो भगीरथ के काल में फलीभूत हुआ। सत्य है पूर्वजों के धर्म–कर्म का फल संतति को भी प्राप्त होता है। सम्भव है इस भगीरथ प्रयास में अन्य राजाओं ने भी भगीरथ का सहयोग किया हो। इनमें राजा जह्नु का विशेष योगदान रहा होगा, जिस कारण से गंगा, जह्नु की पुत्री जाह्नवी नाम से भी विख्यात हुईं।"

"जल निकासी प्रारम्भ होने से हिमालय की तलहटी का दलदल समाप्त होने लगा; वहाँ की धरती उर्वरा हो शस्य–श्यामला हो

गई। हिमालय से पिघली अनंत जल राशि जब गंगा और उसकी सहायक नदियों द्वरा समुद्र पहुँचने लगी तो रसातल में स्थित समुद्र परिपूरित होकर ऊपर उठ गया।"

राम और लक्ष्मण ने गंगावतरण के इस संभावित मानवीय पक्ष को सुन कर विश्वामित्र को नमन किया और गुरु की आज्ञा से शयन को प्रस्थान किया।

विश्वामित्र भी स्वयं निद्रा में लीन हो गए।

अगले दिन प्रातः नित्य क्रियाओं से निवृत्त होकर सभी नौकाओं द्वारा भागीरथी को पार कर विशाला नगर में पहुँचे। वह सभी विशाला के एक सुंदर उपवन में विश्राम के लिए रुके। विश्वामित्र ने अपराह्न समय राम और लक्ष्मण को मंत्रणा के लिए बुलाया। दोनों राजकुमारों के बैठने के बाद विश्वामित्र दोनों भाइयों की ओर उन्मुख हुए, "रघुकुल नन्दन राम और लक्ष्मण, अभी तक तुमने सिद्धाश्रम से विशाला नगरी तक मात्र वनप्रदेश में ही भ्रमण किया। वहाँ का भौगोलिक एवं सामरिक दृष्टि से अवलोकन किया। अब तुम्हें इस दुर्गम प्रदेश को आर्यावर्त विजय हेतु चयन करने के पीछे रावण की रणनीति का अनुमान लग गया होगा। इस प्रदेश में स्थापित, सैन्य स्कंधावार बहुत काल तक सीमावर्ती देशों के संज्ञान में आए बिना अपनी जड़ मजबूती से जमा सकते हैं। भला हो तुम्हारा कि तुमने सिद्धाश्रम के क्षेत्र में पनपते पहले स्कंधावार को ही समाप्त कर दिया। यदि ऐसा न हो पाता तो सम्भवतः आज इस विशाला के इस प्रदेश में इन मुनियों की जगह रावण की सैनिक टुकड़ी उतरती। राम! अब तुम्हें यहाँ के नरेशों से परिचय करना होगा।"

"गुरुवर, क्या यहाँ के नरेश किसी पूर्व सूचना के अथवा बिना बुलाये अयोध्या के राजकुमारों की अपने राज्य में उपस्थिति से प्रसन्न होंगे? उन्हें अपनी सीमाओं का अतिक्रमण तो नहीं लगेगा?"

विश्वामित्र के चेहरे पर शांत मुस्कान छा गई, "हमारे आने की सूचना यहाँ के सम्राट् सुमति को अब तक मिल चुकी होगी। इस प्रदेश

में प्रवेश करते ही तुमने एकाएक वृक्षों में बढ़ी सरसराहट पर ध्यान नहीं दिया। वृक्षों पर सन्निद्ध विशाला के गुप्तचरों ने हमारे आगमन की सूचना अब तक राजा तक पहुँचा दी होगी। राजा सुमति किसी समय भी यहाँ उपस्थित हो सकते हैं।

"हाँ, उन्हें अयोध्या के राजकुमारों के आगमन का अंदेशा नहीं होगा। वह विश्वामित्र ऋषिमंडली का स्वागत करने पधार ही रहे होंगे।"

"और राम!" ऋषि के स्वर में दर्प मिश्रित ओज था, "अब तुम लोग कोई साधारण राजकुमार नहीं हो। तुम ताटका, मारीच और सुबाहु ऐसे दुर्दम्य राक्षस सेनापतियों को नष्ट कर एक कुशल योद्धा और साहसी नायक बन चुके हो। ये आतंक के वे नाम थे जिनसे अयोध्या, विशाला और मिथिला आतंकित तो थे, परंतु उनका विरोध करने का साहस नहीं जुटा सके। उन उपद्रवियों का तुमने विनाश कर दिया। आर्यावर्त का प्रत्येक राज्य अब तुमसे परिचय पाने को उत्सुक है। पुनश्च, राजा सुमति स्वयं इक्ष्वाकु वंशज होने के कारण तुम्हारे कुल–सम्बन्धी हैं।"

उसी समय राजा सुमति के अग्रधावक दूत ने विश्वामित्र से आकर निवेदन किया कि विशाला नरेश, राजा सुमति, विश्वामित्र के दर्शनाभिलाषी हैं।

विश्वामित्र अपने मुनिसमाज सहित राजा की अगवानी को आगे बढ़े। राजा अपने मंत्रियों और कुलगुरु के साथ पधारे थे। विश्वामित्र ने आशीष वचनों से राजा का स्वागत किया। राजा सुमति ने विश्वामित्र को दूर से ही दंडवत् प्रणाम किया। विश्वामित्र ने उन्हें उठा कर गले लगाया। तदनंतर राजा ने सभी मुनियों को प्रणाम किया।

"राजन्, आपका राज–काज और प्रजा कुशल से तो है?"

"जिस राज्य को आपका सामीप्य प्राप्त हो ऋषिवर, वह तो कुशल से है ही" राजा ने हँसते हुए सिद्धाश्रम में आतंकियों के विनाश

की ओर इंगित किया– "आप जैसे दुष्टदलन के रहते विशाला क्या पूरे आर्यावर्त में कुशल ही कुशल है।"

"वह दो बहुचर्चित क्षत्रिय कुमार कहाँ हैं गुरुदेव, जिन्होंने आपकी कृपा से यह दुष्कर कार्य सम्भव किया?" राजा के स्वर में जिज्ञासा और उत्कंठा का समुचित मिश्रण था।

तभी राम और लक्ष्मण की जोड़ी ने सम्मुख आकर राजा को प्रणाम किया "काकुत्स्थ राजा सुमति! दाशरथ राम और लक्ष्मण का प्रणाम स्वीकार करें।"

"दशरथ...! दशरथ राम और लक्ष्मण! अरे इक्ष्वाकु वंशी होने के नाते तुम मेरे सम्बन्धी हुए" कहकर राजा ने दोनों कुमारों को गले लगाया। राम और लक्ष्मण ने आसन पर बैठने से पहले एक बार फिर राजा को प्रणाम किया।

राजा सुमति दोनों भाइयों को सम्मोहित से होकर देख रहे थे। वह सोच रहे थे कि दोनों भाई इतने प्रभावशाली और विक्रमी प्रतीत हो रहे हैं कि साधारण योद्धा तो इनके सामने टिकने का साहस भी नहीं कर सकता। यदि विश्वामित्र ने इनका पूर्व परिचय न भी कराया होता तो भी इनको देख कर यह आसानी से समझा जा सकता था, कि सिद्धाश्रम को निष्कंटक करने में इन्हीं महावीरों का योगदान होगा।

फिर एकाएक विश्वामित्र की ओर उन्मुख हो कर बोले, "भगवन्, आपने मेरे निकट सम्बन्धी दशरथ के पुत्रों से मिलाकर मेरा महत् कार्य सिद्ध किया। राजकाज में व्यस्त रहने के कारण हम दोनों एक दूसरे से मिल ही न सके। आज इस जुगलजोड़ी के आने से सम्बन्ध पुनर्जीवित हो गए। आप इस उपवन के बजाय कुछ दिन विशाला की राजधानी में बिताने की कृपा करें।"

"नहीं राजन्, राजकुमार एवं मुनिमंडली जनक के अद्भुत शिव–धनुष के दर्शन हेतु मिथिला जा रही है।"

शिव–धनुष दर्शन हेतु! राजा की आँखों में कूटनीतिक चमक

उभरी, "हाँ, उनकी बेटी का स्वयंवर भी तो है" सुमति विश्वामित्र के राजनैतिक कोण के प्रति आश्वस्त होना चाहते थे। यदि मिथिला और अयोध्या का सम्बन्ध हो गया तो दोनों राज्यों के मध्य स्थित विशाला को भी अयोध्या से सम्बन्ध प्रगाढ़ करने होंगे।

"देखो, अभी तो हम सब यज्ञोत्सव देखने हेतु ही मिथिला जा रहे हैं। आगे हरि–इच्छा" विश्वामित्र ने सुमति को 'हाँ' और 'ना' गुत्थी स्वयं सुलझाने हेतु, अस्पष्ट सा उत्तर दिया।

कुछ समय बाद राजा सुमति शिष्टाचार के बाद अपनी राजधानी लौट गए। विश्वामित्र की मुनिमंडली ने उसी उपवन में रात्रि व्यतीत कर अगली भोर पुनः मिथिला की ओर चल पड़े।

मिथिला प्रारम्भ होते ही चारों ओर हरियाली और संपन्नता दिखने लगी। मिथिला देश तीन तरफ से नदियों से और उत्तर की ओर से हिमालय से घिरा होने के कारण बहुत ही हरा–भरा और उपजाऊ था। नदी–मार्ग से मिथिला के व्यापारी पश्चिम में प्रयाग और काशी तथा पूर्व में सागर पर्यंत व्यापार हेतु आते जाते रहते। जिससे कृषि और व्यापार दोनों इस प्रदेश में उन्नत थे। वहीं राजा जनक के सुशासन की वजह से जनता भी प्रसन्न और धर्म–प्रवृत्त थी।

कुछ ही दूर चलने के उपरांत उनके मार्ग में एक बहुत विशाल आश्रम पड़ा, जो बिना देखभाल के जंगल में परिवर्तित हो चुका था। उसमे एक अजीब सी नीरवता छाई थी। उस प्रदेश में पक्षियों और जंतुओं का रव भी नहीं सुनाई देता था। यदाकदा नीरवता को भंग करता एक आध पक्षी का स्वर अवश्य सुनाई दे जाता था। लगता था कि वर्षों से इस आश्रम में कोई रह ही नहीं रहा था। सदैव उत्सुक रामानुज के लिए यह जीवंत नीरवता प्रश्न करने को पर्याप्त थी

"गुरुदेव, यह आश्रम एकदम स्तब्ध क्यों प्रतीत हो रहा है। इसमे रहने वाले लोग भी परिलक्षित नहीं होते। यह सारा प्रदेश शापित सा नहीं लग रहा है!" लक्ष्मण स्वयं निश्चय नहीं कर सके कि उनका यह प्रश्न है अथवा वक्तव्य?

विश्वामित्र एकाएक चलते–चलते रुक गए। प्रशंसात्मक स्वर में बोले, "लक्ष्मण, तुम्हारा अतींद्रिय ज्ञान अति उत्तम है। यह सत्य है कि यह प्रदेश शापित है परंतु मानवशून्य नहीं है। कुछ वर्षों पहले यह महान् ऋषि गौतम का आश्रम हुआ करता था। यहाँ वह अपनी पत्नी अहल्या और पुत्र शतानन्द के साथ रहते थे। इनकी गोशाला में गौओं की और गुरुकुल में शिक्षार्थियों की कमी नहीं थी।''

"अहल्या इतनी सुंदरी थीं कि मानो ब्रह्मा ने स्वयं अपने हाथों से इन्हें बनाया था। इसलिए अहल्या ब्रह्मा की पुत्री के रूप में भी विख्यात थीं। कहते हैं कि शिक्षार्थियों के दीक्षांत समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में आए देवराज इन्द्र अहल्या को देखकर मोहित हो गए। वह संसर्ग के लिए व्याकुल हो उठे। किन्तु महर्षि का कोप उन्हें इस प्रयास से विरत कर रहा था। कितना भी महान् क्यों न हो, कामी पुरुष विवेकहीन हो जाता है। ऐसी ही विवेकहीनता के ज्वार में एक दिन इन्द्र सभी मर्यादा पार कर गया। महर्षि गौतम को उसकी नीचता संज्ञान होने पर उन्होंने इन्द्र को नपुंसकत्व और अहल्या को 'प्रस्तर भव'' का श्राप दे दिया। श्राप देने के बाद ऋषि अपने पुत्र शतानन्द जो अभी बालक ही था, के साथ आश्रम छोड़कर चले गए। अहल्या–गौतम का वह पुत्र वर्तमान में मिथिला राज्य के कुल–पुरोहित शतानन्द हैं।"

"और देवी अहल्या?"

"अहल्या पति के श्राप को अंगीकार कर तब से प्रस्तर–भाव में जीवित हैं। न किसी से बोलती हैं न बात करती हैं। मात्र अपने पति का स्मरण तथा ईश आराधना में लगीं रहती हैं। वह इस समय भी आश्रम में होंगी। इसीलिए यह आश्रम तुम्हें जनशून्य नहीं लग रहा था, लक्ष्मण।"

"पर गुरुदेव, इसमे देवी अहल्या का क्या दोष? इन्द्र तो व्यभिचारी कुख्यात है। फिर देवी अहल्या को ऋषि ने श्राप क्यों दिया?"

"लक्ष्मण, यह गाथा अरुचिकर होने के कारण मैंने इसे विस्तार से नहीं सुनाया। फिर भी तुम्हारी जिज्ञासा शमन हेतु जो किंवदंतियाँ

इस दुर्घटना के बारे में प्रचलित हैं, तुम्हें सुनाता हूँ। तुम किसे और कितना सही मानते हो यह स्वयं तुम पर निर्भर करेगा।"

सभी लोग तन्मयता से सुन रहे थे।

"सबसे चर्चित घटना के अनुसार समय–भ्रमवश गौतम अर्ध रात्रि को ही ब्राह्म–मुहूर्त मान, नित्यक्रिया और संध्या निमित्त कुटिया से निकल पड़े। अवसर पाकर इन्द्र, गौतम ऋषि के वेश में अहल्या को धोखे से दूषित कर गया। ऋषि के लौटने पर छद्मवेश में इंद्र को अपनी कुटिया से निकलता देख ऋषि उसका कुकृत्य जान गए और उसको श्राप दिया। वहीं अहल्या को अपने पति का स्पर्श न पहचान, सारे दुष्कृत्य को पाषाणवत् सहन करने के अपराध में प्रस्तर–मूर्ति होने का श्राप दिया। अन्य कथा के अनुसार इन्द्र ने जबर्दस्ती अपने अपूर्व बल का सहारा ले अहल्या पर बलात्कार किया और श्राप का अधिकारी बना। वहीं बलात्कार से दूषित अहल्या को प्रायश्चित से दूषण रहित होने निमित्त पाषाण भाव का श्राप मिला।"

कुछ हिचकते हुए ऋषि ने आगे कहा, "एक किंवदंती के अनुसार इन्द्र के रूप, पराक्रम और वैभव से पराभूत हो अहल्या स्वयं इन्द्र के कृत्य में स्वेछा से सहभागिनी हुई अतः इन्द्र के समान ही श्राप की अधिकारिणी हुई।"

जब विश्वामित्र यह इतिहास बता रहे थे दाशरथों के सामने सिद्धाश्रम की लाचार ललनाओं का चित्र घूम रहा था। किस प्रकार उन सबने आतंककारियों का यौनशोषण भुगता था। उनमें से कुछ केवल प्रतिरोध करने के अपराध में मारी गईं, कुछ ने दुष्कृत्य के अपमान और विषाद से आत्महत्या कर ली और कुछ बच्चों के मोह में अथवा प्राणों के मोह की वजह से दुःशीला होने का कलंक झेल कर मृतप्राय जीवन व्यतीत कर रही थीं।

कितना अन्याय है, दोष किसी का और दूषण किसी को।

लक्ष्मण से नहीं रहा गया। वह फूट पड़े, "जनसाधारण गल्प हेतु चटपटी बातें ही ढूँढता रहता है। मेरे विचार से देवी अहल्या इन्द्र

के व्यक्तित्व व शक्ति के आगे पराभूत हो गईं। क्या यह हमने सिद्धाश्रम की अबलाओं को भूल गए?" फिर एकाएक राम की ओर देख कर कुछ सहमे। राम से प्रतिरोध न देख बोले, "मेरे विचार से इसमें देवी अहल्या का कोई दोष नहीं। वह अब भी हम सबके लिए उतनी ही पूज्य हैं जितनी पहले थीं; वरन् इन कष्टों को सहने के बाद, पहले से भी अधिक।"

कहकर लक्ष्मण शांत होकर गुरु और बड़े भाई की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा करने लगे।

विश्वामित्र के चेहरे पर मुस्कान खिल उठी, "बहुत सुंदर विचार हैं। मेरी समझ से भी अहल्या दूषणमुक्त और पवित्र है। चलो आश्रम में चलकर उनके दर्शन करें।"

कई वर्षों बाद आश्रम में किसी दूसरे की पगध्वनि का भान होने पर समाधिस्थ अहल्या कुछ चेतन हुईं ही थी, कि किसी ने उनके चरणस्पर्श किए। अहल्या के मुँह से वर्षों बाद अस्फुट शब्द निकला "शतानन्द!"

सबकी आँखें नम हो गई। इतने दिनों से परित्यक्त अहल्या के मुख पर अपने पुत्र का ही नाम आया। वह पुत्र, जो तब से अब तक उनके दर्शन के लिए भी नहीं आ सका। सम्भवतः पिता का श्राप उसे भयभीत कर रहा था।

अहल्या के आँख खोलते ही उसे दो श्याम–गौर धनुर्धरों के दर्शन हुए। वह दोनों प्रणाम की मुद्रा में उनके सम्मुख प्रणत थे। क्या दिव्य वेश था जुगलजोड़ी का...

उस जुगलजोड़ी के पीछे से विश्वामित्र की गंभीर वाणी गूंजी, "देवी अहल्या, यह दोनों दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण हैं। इनकी कीर्ति पताका पूरे आर्यावर्त में फहरा रही है। यह दोनों आपको प्रणाम कर रहे हैं। और मैं कौशिक विश्वामित्र, गौतम का सखा, भी आपको ससम्मान नमन कर रहा हूँ। प्रकृतिस्थ हों, देवि" कहकर ऋषि ने भी नमन किया।

"विश्वामित्र..." एकाएक देवि अहल्या ने सिर पर आँचल धरा और ऋषि को प्रतिप्रणाम किया। किन्तु दशरथ पुत्र...? क्या दशरथ को पुत्र–प्राप्ति हो गई? उनके पुत्र इतने ओजमय और तेजस्वी!

मेरा शतानन्द तो इनसे भी जेठा होगा सोचकर उनकी आँखें डबडबा गईं। राम और लक्ष्मण ने पुनः प्रणाम किया। अहल्या ने बड़ी विह्वलता से उन दोनों को अंक में समेट लिया। बरसों संचित ममता का बाँध, निर्झर बह निकला। राम और लक्ष्मण उनके अंक से लगे रहे।

फिर कुछ देर बाद अहल्या ने प्रकृतिस्थ हो कर विश्वामित्र को भूमि पर मत्था टेककर प्रणाम किया, "क्षमा कीजिएगा ऋषिवर, ममता में औपचारिकता विस्मृत हो गई।"

अहल्याश्रम में जैसे बसंत आ गया। सारी नीरवता लुप्त हो गई। जो आश्रमवासी अभी तक श्राप के भय से आश्रम से दूर थे वह विश्वामित्र के साथ जन–रक्षक राम–लक्ष्मण के दर्शन को उमड़ पड़े। संवासिनियाँ अतिथियों को कंद मूल प्रस्तुत कर धन्य हो रही थीं।

अगले दिन अहल्याश्रम से विदा होते समय विश्वामित्र ने कहा, "देवि अब आपका पुण्य–काल प्रारम्भ होता है। आप अपने पति गौतम के पास प्रस्थान करें, वह व्याकुलता से आपकी बाट जोह रहे हैं।"

राम और लक्ष्मण ने उन्हें प्रणाम किया और 'भानुकुल भानु' होने का आशीर्वाद पाया।

सत्य है कि दोनों भाई जीवन भर सूर्य की भाँति ही दमकते और तपते रहे।

निशाचर

"गुरुदेव, सारे पशु–पक्षी ब्रह्ममुहूर्त में जागते है। फिर हम मनुष्यों को दो घड़ी रात्रि रहते ही जागने का विधान क्यों?" मुनिमंडली से एक ने प्रश्न किया।

"क्योंकि हम पशु नहीं हैं", विश्वामित्र विनोदपूर्वक बोले।

फिर गंभीर होकर कहने लगे "यह कहना सत्य नहीं कि सारे

पशु–पक्षी रात में सोते और दिन में जागते हैं। यदि ध्यान दो, तो तुम रात्रि की इस नीरवता में भी वन की हलचल सुन सकते हो। पत्तों में खड़खड़ाहट, नीचे गिरे सूखे पत्तों की चरमराहट तुम्हें वन्य–पशुओं की पगध्वनि का भास नहीं दे रहीं क्या? उलूक और चमगादड़ उड़ते दृष्टिगोचर नहीं होते? यह सब निशाचर पशु–पक्षियों की उपस्थिति का आभास दे रहे है; भले ही हम उन्हें देख नहीं रहे। प्रकृति ने जिस योनि को जो कुछ शारीरिक क्षमताएं अथवा अक्षमताएं प्रदान कीं, उनके अनुसार ही उनकी दिनचर अथवा निशाचर प्रवृत्ति होती है।"

"जिस योनि के जीवों को प्रकृति ने रात्रि–दृष्टि अथवा रात में भी देखने की शक्ति प्रदान की वह अधिकतर रात्रि में ही विचरते हैं। क्योंकि दिन के अत्यधिक चमकीले प्रकाश में इनकी आँखें चौंधिया जाती हैं और यह ठीक से देख सकने में उतने समर्थ नहीं रहते। ऐसे निशाचर जीवों में हिंस्र पशुओं के अलावा राक्षस और पिशाच योनियाँ भी सम्मिलित हैं। यह सब अधिकतर अपने भोजन की खोज में रात को ही निकलते हैं। निद्रा–आवेशित दिनचर आसानी से इनका ग्रास बन जाते हैं।"

"हमारी यह टोली भी हो सकता है किसी निशाचर की दृष्टि में हो। किन्तु हमारे हवनकुंडों में प्रज्ज्वलित पवित्र अग्नि और शस्त्रधारी आर्यपुत्रों की उपस्थिति इन्हें हमारे ऊपर आक्रमण करने से विरत कर रही है। वन में अग्निहोत्र हमारे धर्म का हिस्सा बनाया गया। तुम्हें ज्ञात होगा कि सभी जीवों में मनुष्य बुद्धिबल से सबसे सफल और उत्कृष्ट आखेटक है। युगों से मनुष्य द्वारा शिकार किए जाने के कारण वन्य पशु मनुष्यों से दूर रहने का प्रयास करते हैं। वह उन स्थानों से भी दूर रहते हैं जहाँ मानवीय आवागमन अधिक होता है। इसी वजह से वनों से गुजरते पथिक अपना पड़ाव वन मार्गों और पगडंडियों के पास ही बनाते है। इससे हिंस्र जंतुओं के आक्रमण की आशंका कम हो जाती है।"

"सहस्राब्दियों से मानव भी समूहबद्ध होकर प्रातः मुँह अंधेरे

इसी आशय से मृगया को निकलता होगा। इस अहोरात्रि की सांध्य वेला में निशाचर, पशु रात्रि परिश्रम से क्लांत, सुस्त, और विश्राम की स्थिति में होंगे। दिनचर अभी पूर्ण रूप से जाग्रत और स्फूर्त नहीं हुए; उस समय मानव दल आसानी से इनको अपना लक्ष्य बनाने में सफल होता होगा। प्रागैतिहासिक काल से यह आखेटक प्रवृत्ति मानव की प्रकृति में रच बस गई। यही कारण है कि सूर्योदय से दो घड़ी पूर्व हम सर्वाधिक ऊर्जस् और सचेत होते हैं। बढ़ते ज्ञान–विज्ञान से इन्हें 'यम–नियम' में सम्मिलित कर लिया गया। संन्यास में नवदीक्षित लोगों को यह दुष्कर प्रतीत हो सकता है, किन्तु बाद में अभ्यास हो जाने पर यह नियम हमारी दिनचर्या का भाग बन जाता है।"

इसके बाद विषय परिवर्तन हेतु बोले, "अच्छा, अब हमलोगों को अब विश्राम करना चाहिए ताकि प्रातः सूर्योदय के पहले ही मिथिला को प्रयाण किया जा सके।"

----------x------x------x----------

राजा जनक विदेह कहे जाते थे। उनका राज्य विस्तार हेतु सैन्य संधान में विश्वास नहीं था। फिर भी सुरक्षा की दृष्टि से मिथिला नगरी तीन ओर से अभेद्य प्राचीर से आच्छादित थी। मिथिला में प्रवेश हेतु केवल एक ही मार्ग था। सैनिकों की एक बड़ी टुकड़ी इस द्वार पर सन्नद्ध रहती थी। प्रवेश द्वार पर पहुँचने के बहुत पहले ही विश्वामित्र के आगमन की सूचना मिथिला पहुँच चुकी थी। राजद्वार के प्रहरी सतर्क हो गए। राजा जनक को ऋषि आगमन की सूचना प्रेषित हो गई। जब तक ऋषि राजद्वार पहुँचे, राजा जनक अपने सचिवों और कुलगुरु शतानन्द के साथ उनका स्वागत करने को प्रस्तुत थे। विश्वामित्र ने विदेहराज की प्रशासनिक तत्परता को मन ही मन सराहा।

विदेहराज दूर से अपने शिष्टमंडल के साथ पैदल ही आते दिखे। विश्वामित्र को देखते ही जनक ने दूर से ही भूमि पर लेटकर प्रणाम किया और उसी मुद्रा में प्रणत रहे। विश्वामित्र ने तत्परता से

आगे बढ़कर उन्हें उठाया और गले लगाकर कोटिशः आशीर्वाद दिया। राजा के बाद शतानन्द व सचिवों ने विश्वामित्र व मुनि मंडली को प्रणाम किया।

"जनक, तुम्हारे धनुष यज्ञ की चर्चा भरतखंड में दूर–दूर तक फैल चुकी है। हम सब भी उस महायज्ञ के दर्शनार्थी हैं। इसके लिए तुम्हारी अनुमति तो है ना?", विश्वामित्र ने हँसते हुए राजा से कहा।

"मिथिला में, और विशेषकर मेरे, इस पुनीत यज्ञ में आपकी उपस्थिति से अधिक पावन और मंगलकारी क्या हो सकता है, प्रभु" जनक सिर झुकाकर उत्साह से बोले। किन्तु जैसे ही उन्होंने दृष्टि ऊपर की, उन्हें मुनिटोली के पीछे रक्षाकवच सा बनाये दो श्यामल–गौर पुरुष–सिंह दिखे। प्रणति में झुके जनक, झुके ही रह गए– इतनी भव्य आकृति, वृषभ कन्ध, ऊँचा कद, सिंह जैसी ठवन, प्रत्यंचा–चिह्नों से अंकित बलिष्ठ विशाल भुजाएँ, हर पग में धरती को आश्वस्त करती चाल, और आँखों में सामने वाले कोई क्षण में प्रणत कर देने वाला तेज। अलौकिक छवि! उन्हें देख जनक सचमुच विदेह हो गए।

विश्वामित्र मन ही मन मुस्कराये– वीर दाशरथों के प्रथम दर्शन का यही प्रभाव होता है। उन्होंने ने जनक को कंधे से छू कर प्रकृतिस्थ किया "यह दोनों चक्रवर्ती सम्राट् दशरथ के यशस्वी पुत्र राम और लक्ष्मण हैं। सिद्धाश्रम को इन्हीं वीरों ने निष्कंटक किया। यह सूचना तुम तक पहुँच चुकी होगी?"

जनक के नेत्र विस्फरित हो गए; सिद्धाश्रम–कांड में क्या विश्वामित्र का कोई योगदान नहीं था! इन किशोरों ने ही उस वन प्रभाग को आतंकविहीन किया। जनक ने सोचा यदि पहले किसी ने बताया होता तो वह इस पर विश्वास नहीं करते। किन्तु इन वीरों को देख अनुमान होता है कि ताटका, मारीच ऐसे अनाचारियों का दमन करने में यह किशोर ही सक्षम हो सकते हैं।

राम और लक्ष्मण ने आगे आकर जनक की अभ्यर्थना की, "दाशरथ राम और लक्ष्मण प्रणाम करते हैं, राजन्!"

जनक ने स्वस्ति मुद्रा में आशीर्वाद दिया, और दशरथ की कुशल क्षेम पूछी। फिर अचानक विश्वामित्र की ओर उन्मुख होकर कह उठे, "मैं चाहूँगा कि यह दोनों नर–पुंगव भी मिथिला में पधार धनुष–यज्ञ में सम्मिलित हों।"

विश्वामित्र हँसते हुए बोले, "दाशरथ युगल तो आपके आमंत्रण के बिना ही आपके यहाँ पधार गए" फिर कुछ रुककर गंभीरता पूर्वक कहा, "परंतु स्वयंवर में प्रतिभागिता हेतु, इन्हें अपने पिता राजा दशरथ की अनुमति प्राप्त होना अति आवश्यक है, राजन्। वैसे भी अभी भी इन्हे ब्रहचर्य आश्रम में कुछ वर्ष और व्यतीत करने हैं। उस अवधि बाद ही इनके विवाह का विचार करना होगा।"

"मुनिवर, मैं आपको अपनी मुनि–मंडली और शिष्यों समेत औपचारिक रूप से आमंत्रित करता हूँ। कृपया कल यज्ञ–शाला में अवश्य पधारें।" जनक विनम्रता से कहकर किसी विचार में डूबे, वापस महल चले आए।

----------x------x------x----------

विश्वामित्र की मुनि–मंडली ने सुलभ जल स्रोत के निकट विश्राम करने का निश्चय किया। जनक के अनुचरों ने सभी संतों को उनके शिविर में ही भोजन की व्यवस्था करा दी थी। अतः सभी संध्या, अग्निहोत्र व भोजन के बाद हमेशा की तरह विश्वामित्र के पास उपस्थित हुए।

"गुरुदेव, मुझे लगता है कि कल से हमलोग मिथिला दर्शन और धनुष–यज्ञ में रमने लगेंगे। अतः एक प्रश्न जो मेरे मन में बहुत दिनों से घुमड़ रहा है, आज्ञा हो तो आज उसका भी निवारण करना चाहूँगा", लक्ष्मण ने गुरु की अनुमति चाही।

गुरु की स्वीकृति पाकर लक्ष्मण ने अपना प्रश्न किया "सिद्धाश्रम से हम लोग गंगा को पार कर सीधे ही मिथिला में प्रवेश कर सकते थे। फिर हम लोगों ने शोण नदी को पार करने के बाद गंगा पार कर एक लंबे रास्ते को क्यों चुना?"

"सत्य है कि मैंने लंबा और दुरूह मार्ग चयनित किया। इसके बारे में, रामानुज तुम्हारा स्वयं का क्या अनुमान है?"

"इसके पीछे आप की कोई नीति अथवा शिक्षा छुपी होगी; ऐसा मेरा मानना है।"

"राजपुरुषों को अपने और पड़ोसी राज्यों की भौगोलिक स्थिति का ज्ञान होना अति आवश्यक है। उन्हें भान होना चाहिए कि मार्ग में कौन–कौन सी बाधाएँ हैं। व्यापारिक और स्वयं के सैन्य अभियान में उन बाधाओं को सुगम बनाना और सरलता से पार करने के स्थल और उपायों का परिमित ज्ञान होना आवश्यक है; वहीं शत्रु राजाओं के अभियान को रोकने अथवा उनकी गति धीमी करने के लिए इन बाधाओं का यथोचित सामरिक उपयोग किया जा सके। दूसरा सीधे मिथिला में प्रवेश करने से तुम विशाला नगरी व देवी अहल्या के दर्शनों से वंचित रह जाते। पड़ोसी राजाओं को ऐसा विश्वास होना चाहिए कि तुम मार्ग की समस्त भौगोलिक और सामरिक विशेषताओं से भलीभाँति परिचित हो। राजपुरुष को सदैव अप्रत्याशित से आशंकित और जागरूक रहना चाहिए। राजनीति में कोई सदैव ही मित्र या शत्रु नहीं रहता।"

"भविष्य में यदि तुम्हें इस दिशा को प्रयाण करना पड़ा तो तुम्हारे लिए यह क्षेत्र अपरिचित नहीं होगा। युद्ध की स्थिति में जबतक तुम सीधे–सीधे गंगा पार करोगे तबतक विशाला और मिथिला राज्य की सेनाएँ तुम्हें सन्नद्ध मिलेंगी। वहीं यदि तुम अपनी सेना के साथ पहले शोण की ओर जाओगे तो यह दोनों राज्य तुम्हारे मन्तव्य का अनुमान नहीं कर पाएंगे। वहीं दूसरी दिशा की ओर जाते हुए तुम्हारा एकाएक शोण पार करना उनके लिए अप्रत्याशित होगा।"

ऊर्ध्वगामी चंद्रमा के साथ सभी लोगों ने गुरु और गुरुजनों को नमन कर शयन हेतु प्रस्थान किया।

अगले दिन दोनों राजकुमार और मुनिमंडली विश्वामित्र से अनुमति लेकर मिथिला दर्शन को चल पड़े। राजकुमारों और मुनियों के

उत्सुकता केंद्र भिन्न होने की वजह से, दोनों के मार्ग थोड़ी देर के बाद अलग–अलग हो गए। मुनियों का रुझान जहाँ मंदिरों, देवालयों में था, वहीं राजकुमार मिथिला दुर्ग की प्राचीर, आंतरिक सुरक्षा में रुचि रखते थे। परन्तु बहुश्रुत शिव–धनुष के दर्शन की लालसा दोनों में तीव्रतम थी।

स्वयंवर में आए समस्त राजाओं की सेना को दुर्ग प्राचीर के बाहर उचित प्रबंध के साथ रोक दिया गया था। सभी अभ्यर्थियों को थोड़े से अंगरक्षकों के साथ मिथिला नगरी के विपुल उपवनों में आवास का प्रबंध किया गया था। पूरी मिथिला एक निश्चित वास्तु के अनुसार गढ़ी गई थी। ऐसे स्थापत्य से आपत्काल में मुट्ठी भर सैनिक ही एक विशाल सेना को संभाल सकने में सक्षम थे। सामरिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थलों पर सशस्त्र सैनिकों की टुकड़ियाँ सन्नद्ध थीं। सादे वेश में मिथिला के गुप्तचर बाहर से आए लोगों के बीच घुल मिल कर नगर में किसी संभावित षड्यंत्र को सूँघ रहे थे।

नगर के उत्तरी पूर्वी भाग में राज–देवालय था, जिसमें कहा जाता था कि स्वयं विदेह राज पूजा अर्चना हेतु पधारते हैं। इसी देवालय में शिव–धनुष भी स्थापित था, जिसे जनक नित्य नमन करते थे।

इस देवालय के विशाल प्रांगण में ही सीता स्वयंवर का आयोजन होना था। एक विशाल वेदी पर रखा शिव–धनुष मानों स्वयं आलोकित था। धनुष स्थल के चारो ओर सुंदर रंगभूमि विनिर्मित थी। रंगभूमि से पर्याप्त दूरी पर चारो ओर दर्शको के बैठने की व्यवस्था थी। दर्शक–दीर्घा के एकदम सामने आगे की ओर स्वयंवर के प्रतिभागियों के बैठने की व्यवस्था थी। सामने पूर्व की ओर राजा का सिंहासन स्थित था। सिंहासन के बाईं ओर मंत्रियों और दाहिनी ओर ऋषि–मुनियों के विराजने की व्यवस्था थी।

राम और लक्ष्मण ने सबसे पहले धनुष को प्रणाम कर उसकी प्रदक्षिणा करी, उसके बाद समस्त रंगभूमि का अवलोकन किया।

व्यवस्था से संतुष्ट हो, जनक के आयोजन विन्यास की मन ही मन प्रशंसा करते हुए एक बार पुनः शिव–धनुष को प्रणाम कर अपने डेरे को चल पड़े।

सांध्य चर्चा में जब विश्वामित्र ने स्वयंवर स्थान और प्रबंध के बारे में पूछा तो लक्ष्मण ने विस्तार से रंगभूमि का वर्णन किया।

"तुम लोगों को ज्ञात होगा कि बहुधा स्वयंवर में असफल राजा उद्दंडता पर उतर आते हैं। वह सामूहिक रूप से विजेता और कन्या–पक्ष को पराभूत कर बलात् वधू का अपहरण करने का प्रयास करते हैं। इसी प्रयोजन से, तुमने देखा होगा कि, पूर्वोपाय के रूप में प्रतिभागी सेनाओं को मिथिला नगर की प्राचीर के बाहर ही रोक दिया गया है। वहीं रंगभूमि की संरचना भी इस प्रकार करी जाती है कि कन्या–पक्ष अल्प सैन्य बल के साथ ही इस दुष्प्रयास को असफल कर सके। क्या तुम्हें जनक की रंगशाला में ऐसी सन्नद्धता दृष्टिगत हुई?" ऋषि अपने शिष्यों को शिक्षित करने का कोई पल व्यर्थ नहीं जाने देना चाहते थे।

राम की ओर क्षण भर देखने के बाद लक्ष्मण "हाँ, गुरुदेव, रंगमंच का निर्माण इस प्रकार किया गया है कि प्रतिभागी दीर्घा का प्रत्येक व्यक्ति सिंहासन के पास खड़े धनुर्धरों के लक्ष्य में होगा। इस प्रकार केवल मुट्ठी भर सैनिक ही उद्दंड प्रतिभागियों को नियंत्रित करने में सक्षम होंगे।"

गुरु अपने शिष्यों कि निरंतर क्षात्र–बुद्धि से संतुष्ट दिखे।

अगले दिन दोनों भाई विश्वामित्र कि मुनि मंडली के साथ धनुष–यज्ञ देखने चल पड़े।

----------x------x------x----------

कथा कहते–कहते विश्वामित्र का कंठ सूख सा गया। वह कुछ देर रुके। एक घूँट पानी पीने के बाद आँखें बंद कर कुछ सोचते रहे। फिर एकाएक आँखें खोल कर मुस्कराते हुए उर्मिला की मैथिल सेविका, जिसने उनकी प्राण–रक्षा भी की थी, से बोले "गौरी, उस सीता–स्वयंवर के समय भी तुम देवी उर्मिला की सेवा में रही होगी।

सो मिथिला की मैथिली और उसके स्वयंवर के बारे में बताने के लिए इस समय तुमसे श्रेष्ठ कौन होगा! अतः आगे की कथा यदि तुम बताओगी तो वह अधिक विश्वसनीय होगी।''

श्रोता से एकाएक वाचक की भूमिका में, वह भी महर्षि के सम्मुख!

गौरी भयभीत हो गई। उसके मुँह से केवल "नहीं" शब्द प्रस्फुटित हुआ। परंतु थोड़ी देर पति के प्रोत्साहन और दिलासा के बाद वह ऋषि का आदेश मानने को प्रस्तुत हुई। उसने माथे पर आँचल रख कर ऋषि को प्रणाम किया, और कुलदेवता का स्मरण कर उसने बोलना प्रारम्भ किया–

सीता

बुआई के पहले हल जोतने से धरती पर जो रेखा या खूंड निर्मित होती है उसे 'सीता' कहते हैं। हल द्वारा खेत में पहली खूंड रेखा बनाने के बाद कृषक उस खूंड या सीता की इस आशय से पूजन करते हैं ताकि इस सीता में डाला अन्न खूब फूले फले और पैदावार अच्छी हो। इस प्रकार धरती की यह 'सीता' जीवनदायनी अन्नपूर्णा मानी जाती है।

एक बार मिथिला में भीषण अकाल पड़ा। प्रजा हाहाकार करने लगी। लोकमत के अनुसार राजा जनक सपत्नीक खेत में हल चलाने पहुँचे। हल चलाते समय उन्हें उस खेत में एक नवजात कन्या मिली। प्रश्न था कि नवजात वहाँ पहुँची कैसे?

सम्भव है कि अकाल के चलते किसी भूखे परिवार ने एक और प्राणी के पोषण के दायित्व से बचने लिए उसे ऐसे स्थान पर छोड़ गया हो जहाँ स्वयं राजा को आना था। हर मुँह को भोजन देना राजा का कर्तव्य है। बच्ची यदि जीवित बची तो, नवजात, राज्य द्वारा पल जाएगी।

जनक ने तत्काल ही कन्या को उठा कर अपनी पत्नी को दिया। कन्या के गोद लेते ही निःसंतान रानी का मातृत्व जाग्रत हुआ और उन्होंने उस कन्या को अपनी पुत्री के रूप में स्वीकार कर लिया।

अकाल की तपती धूप और गर्मी में, जनहित में, जनक द्वारा हल चलाने से जनक को सुयोग से जहाँ संतान प्राप्ति हुई; वहीं दैव योग से मिथिला में भरपूर वर्षा भी हुई। पृथ्वी धान्य से लहलहा उठी। अकाल के दुर्दिन में भी सीता के अवतरण से मिथिला शस्यशालिनी हुई, अतः प्रजा में कुछ लोग उसे 'शाकम्भरी' नाम से पूजने भी लगे।

सीता के घर आने के कुछ समय बाद जनक की रानी सुनयना ने एक पुत्री को जन्म दिया जिसका नामकरण उर्मिला हुआ।

सीता बड़ी होकर अपूर्व सुंदरी हुई। उसके रूप की ख्याति सम्पूर्ण आर्यावर्त में फैलने लगी। अभी वह युवती भी नहीं हुई थी कि रूप–लोलुप राजाओं के सीता हेतु प्रस्ताव आने लगे। परंतु राजा अभी अपनी पुत्री का विवाह नहीं करना चाहते थे। उनके इस विचार को क्षत्रियों ने अपना अपमान माना, और बलात् सीता को छीनने हेतु मिथिला पर आक्रमण करने लगे। जैसा कि मुनि श्रेष्ठ कह चुके हैं कि एक समय ऐसा भी आया कि चारो ओर से घिर जाने पर, जनक को उनके पास धरोहर के रूप में मिला प्रसिद्ध शैव धनुष उठाना पड़ा। शैव धनुष के आगे कोई भी टिक नहीं सका। कुछ राजा मारे गए कुछ भाग गए और बचे राजा बंदी बना लिए गए।

यह सभी बंदी राजा मृत्यु के हकदार थे परंतु विदेह ने उन्हें क्षमा कर मुक्त कर दिया।

तबसे सीता कि सुंदरता के अलावा शिव धनुष के लिए भी मिथिला जानी जाने लगी।

सीता सुंदरी होने अलावा विदुषी और वीर भी थी। जनक के छोटे भाई, उसके चाचा 'कुशध्वज' द्वारा उसे सभी प्रकार के अस्त्र शस्त्र के संचालन की दीक्षा मिली।

जनक प्रति दिन शिव की आराधना के उपरांत शिव धनुष को प्रणाम करते थे। एक दिन उनका ध्यान गया कि पूरी धनुष–शाला और धनुष रखने के स्थान पहले की अपेक्षा अधिक स्वच्छ रहने लगा। शाला की स्वच्छता तो कोई साधारण सेवक भी कर सकता है। परंतु विशाल धनुष को उठाए बगैर उसके नीचे के स्थान को स्वच्छ करना सबके द्वारा सम्भव नहीं था। किंवदंती है कि देवी सीता में स्वयं इतना बल था यह कार्य पिता के पूजा के पहले स्वयं देवी सीता करती थीं।

दीपशिखा सम जुबति तन, मन जनि होय पतंग।

सीता के सौंदर्य की चर्चा भरत–खंड क्या समूचे जंबुद्वीप में विस्तार पा चुकी थी। वह सुदूर लंका में रावण के कानों तक भी पहुँची। कुख्यात रूप–लोभी रावण अब पौत्र और प्रपौत्रों वाला हो चुका था। वह अनेक सुंदरियों को स्वेच्छा से अथवा बलात् भोग चुका था। अब भी उसका रनिवास सुंदर नारियों का सर्वश्रेष्ठ आगार माना जाता था। अपनी अवस्था के चलते या फिर उसे अहंकार था, कि जो उसके पास है, वह सर्वश्रेष्ठ है; उससे अच्छा कहीं हो ही नहीं सकता। अतएव वह सीता के रूप–लावण्य की गाथा से अब तक वह प्रभावित नहीं हुआ था। फिर भी उसने सीता स्वयंवर में जाने का मन बनाया। स्वयंवर में सम्मिलित होने के बहाने, उसे मिथिला राज्य का सामरिक सर्वेक्षण करने का अवसर मिलेगा। दंडक वन में कुछ दिन प्रवास कर पहले उसने, वहाँ से मैथिल नागरिकों के वेश में अपने गुप्तचरों को मिथिला भेज दिया। कुछ अंतराल के बाद जब नीतिज्ञों के अनुमान के अनुसार भेजे गुप्तचर जनसाधारण में मिल गए होंगे, के बाद ही रावण ने आर्यावर्त की दिशा में प्रस्थान किया।

मिथिला के नगर द्वार पर वह मात्र अपने दस सशस्त्र अंगरक्षकों के साथ पहुँचा। उसके भव्य व्यक्तित्व और आकृति देख किसी भी प्रहरी की उसे रोकना तो दूर, पूछ–ताछ करने का भी साहस नहीं कर सका। रावण ने प्रवेश के बाद पूरे नगर का भ्रमण किया। रास्ता पूछने के बहाने वह नागरिक वेश में अपने गुप्तचरों से भी बात करता चला।

इस प्रकार मिथिला के राजतंत्र, उसकी कमजोरियाँ और प्रबलताओं से भली भाँति परिचित होने के बाद ही वह धनुष–यज्ञशाला में पहुँचा। रावण ने पश्चिमी द्वार से प्रवेश किया। शिव का विशाल धनुष एक स्फटिक की ऊँची वेदी पर पूर्व दिशा में स्थापित था। अपने इष्ट के धनुष का दर्शन करते ही वह भाव विह्वल हो उठा। उसे लगा जैसे साक्षात् कैलाशपति के दर्शन हो गए।

तभी उत्तरी द्वार से सीता ने जयमाला लिये, अपनी सहेलियों

के साथ प्रवेश किया। सभागार में उत्तेजना फैल गई। रावण ने भी बाईं आँख के कोने से सीता को प्रवेश करते देखा। उसने अपना सर बाईं ओर सीता की ओर घुमाया।

...रावण स्तब्ध रह गया। ऐसा अकल्पनीय सौन्दर्य। उसका सारा ध्यान इष्ट भक्ति से हट कर सौंदर्य उपासना में लीन हो गया। उसे लगा जैसे प्रकृति की समस्त सुंदरता स्त्री रूप में घनीभूत हो उठी। छरहरी काया, कमनीय एवं कोमल। कोमल होते हुए भी सीता निर्बल नहीं थी। सीधी पीठ, दर्प से उठा शिर, लज्जा से नमित नयन। सीता जब शिव धनुष को प्रणाम करने वेदी तक जाने लगी तब रावण को प्रतीत हुआ जैसे कोई दीपशिखा चलायमान हो गई हो। उसने अनुभव किया कि यहाँ उपस्थित सभी राजा इस शिखा पर मंडराने वाले पतिंगों से अधिक नहीं थे। उसकी आँखें लगातार उस ज्योति का पीछा करती रहीं।

रावण जो मात्र मिथिला के सामरिक सर्वेक्षण के लिए आया था, के हृदय में सीता के वरण की इच्छा बलवती हो गई। उसने निश्चय किया कि वह आगे बढ कर धनुष का संधान कर जनक की प्रतिज्ञा पूर्ण कर सीता को प्राप्त कर ले। उसे विश्वास था कि जब वह अपने इष्ट–देव समेत समूचे कैलाश को अपनी भुजाओं पर उठा सकता है तो धनुष उठाने में कोई श्रम नहीं होगा। वह शीघ्रता से धनुष की ओर बढ़ा।

तब तक सीता धनुष वेदी के पूर्व में शिव धनुष को प्रणाम करने के लिए मुड़ी। अब रावण को सीता का पूरा मुख सामने से दिखा। उसे अभी तक केवल आधे चंद्रमा के दर्शन हो रहे थे। पूर्णचंद्र को देख कर उसकी समाधि सी लग गई। सीता ने शिवधनुष को प्रणाम कर अपनी बंद आँखें खोली। धनुष के सामने खड़ा रावण उसे निर्निमेष देख रहा था। सीता की आँखों में क्षण भर के लिए विद्युत सी चमकी; तत्काल सीता ने अपनी पलकें गिरा लीं।

सीता से आँख मिलते ही रावण को प्रतीत हुआ कि वह दीपशिखा एकाएक एक जलती मशाल में परिवर्तित हो गई। मशाल की

लौ प्रदीप्त स्वर्ण कमल प्रतीत हो रही थी। रावण को एक बार फिर तमाम पतिंगे उस मशाल की लौ में जल कर मरते दिखे। उसने देखा कि एक विशालकाय भँवरा भी मशाल की ज्योति की ओर खिंचा चला आया। वह लौ के पास आने का प्रयास कर रहा है परंतु ज्वाला की गर्मी से फिर दूर चला जाता है। फिर एकदम से वह भँवरा लौ को छूने के प्रयास में भस्म हो स्फुलिंग बन नष्ट हो जाता है।

रावण को लगा की वह विशाल भँवरा वह स्वयं है। उसका आत्मबल डगमगा गया। धनुष की ओर गमन करती उसकी गति मद्धिम पड़ गई। वह धीरे से धनुष को प्रणाम कर वापस लौट आया।

यज्ञ–शाला में रावण की उपस्थिति ने उपस्थित सभी नरशों के मन में भय का संचार कर दिया था। उसके भय से समस्त सभा असहज हो गई। रावण के जाने के बाद ही सब आश्वस्त हो सके।

विद्वान ऋषि पुत्र होने के कारण रावण एक बहुत बड़ा ज्ञानी भी था। ज्योतिष पर भी उसका पूर्ण अधिकार था। सामने वाले का ललाट देख कर वह उसका भविष्य पढ़ लेने की अद्‌भुत क्षमता थी उसमें। (आज भी इस विद्या को 'रावण–विद्या' के नाम से जाना जाता है।)

सीता के मस्तक को देखते ही उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि यह कन्या उसके मरण का कारण बनेगी। उसके तत्काल बाद ही भँवरे के रूप में स्वयं का सीता कि लौ में नष्ट होना उसे बहुत कुछ बता गया। यही कारण था कि रावण मात्र शिव धनुष को प्रणाम कर लौट गया।

रास्ते भर उसकी आँखों के आगे ज्वाला और नाशवान भँवरा घूमता रहा। उसने अपने मन से मिथिला पर सैन्य संधान का विचार त्याग दिया, और प्रणाम कर वापस लौट चला। उसके रंगभूमि से प्रयाण करते ही स्तब्ध रंगभूमि में चेतना लौटी। सभी ने आश्वस्ति की साँस ली।

ऐसा था रावण का आतंक !

रावण रंगभूमि से निकल तो आया, किन्तु अभी भी वह सीता

की रूप–माधुरी में मग्न था। फिर एकाएक उसे मशाल पर मँडराते भँवरे का स्मरण हुआ। उसे आघात सा लगा। चेतन होते ही उसे सामने से ऋषि विश्वामित्र अपनी मंडली के साथ आते दिखाई दिये। उसकी दृष्टि उनमें सबसे आगे चल रहे दो अद्‌भुत काया वाले ऋषिकुमारों पर पड़ी, वह दो घड़ी के लिए ठिठका किन्तु अपने विचारों में वहाँ से निकल आया।

रावण की विशाल पुष्ट काया, तेजस्वी राजसी ब्राह्मण वेश, ललाट पर बड़ा त्रिपुंड उसके शिव–भक्त होने का परिचय दे रहा था। रावण का प्रभावशाली मुखमंडल व ठवन देख दाशरथ कुमार भी अप्रभावित नहीं रह सके। उन्होंने ब्राह्मण वेशधारी रावण को प्रणाम किया। किन्तु अपने मद में मस्त रावण, मात्र विश्वामित्र को प्रणाम कर कुंजर गति से चला गया।

विश्वामित्र ने रावण के अभिवादन पर स्वस्ति मुद्रा में हाथ अवश्य उठाया, परंतु उनके मुख से कोई आशीर्वाद नहीं निकला। उन्होंने मुड़कर अपने शिष्यों से कहा, "हमलोगों का आगमन बहुत सुंदर समय हुआ है। स्वयंवर से लंकेश के वापस चले जाने से रंगभूमि में उपद्रव की आशंका काफी न्यून हो गई। अच्छा संयोग है कि तुम्हें विश्वविजयी रावण के दर्शन भी हो गए। भविष्य में यही आकृति तुम्हारे संधान में होनी चाहिये", कहकर विश्वामित्र ने यज्ञ भूमि में प्रवेश किया।

विश्वामित्र को देखकर सारी सभा आदर में खड़ी हो गई। राजा जनक ने आगे बढ़ कर स्वागत किया। विश्वामित्र को प्रणाम कर उन्हें अर्घ्य अर्पित किया। राम और लक्ष्मण का प्रणाम स्वीकार कर उन्हें आशीष देते हुए जनक ने उनका भी विशेष रूप से स्वागत किया। विश्वामित्र व दाशरथों को सिंहासन के दाहिनी ओर बैठाया गया।

विश्वामित्र के साथ राम और लक्ष्मण को देख राजाओं में कानाफूसी प्रारम्भ हो गई। सबने अनुमान लगा लिया कि सिद्धाश्रम को आतंकियों से निर्मूल करने वाले दोनों वीर यही हैं।

जनक के सिंहासन आरूढ़ होने के पहले विश्वामित्र को प्रणाम

करके कहा, "भगवन्, प्रतीत होता है कि सभी प्रतिभागी अपना–अपना स्थान ग्रहण कर चुके हैं। यदि आज्ञा हो तो स्वयंवर की कार्यवाही प्रारम्भ की जाय?"

विश्वामित्र ने पूरी रंगभूमि का अवलोकन करने के बाद स्वीकृति की मुद्रा में सिर हिला कर अनुमति प्रदान की। राजसिंहासन के दोनों ओर खड़े चार चारणों ने जनक व जनक की वंश–विरुदावली का समवेत स्वर में गान करने के बाद शिव–धनुष का परिचय दिया। इसके बाद जनक के भाई राजा कुशध्वज ने सीता स्वयंवर का विधान बताना प्रारम्भ किया–

"समस्त जम्बूद्वीप से पधारे वीर राजपुरुषों, आप चारणों द्वारा शिव–धनुष की गुरुता और महानता का वर्णन सुन चुके हैं। यह कोई साधारण धनुष नहीं है। इसे मात्र उठाना ही अपने में अद्‌भुत बल का प्रमाण होगा। सीता स्वयंवर की शर्त है, कि जो वीर्यवान पुरुष इसे उठा कर इस पर प्रत्यंचा संधान करने में सक्षम होगा उसे ही 'सीता' वरण करेगी। ऐसी मिथिला नरेश की प्रतिज्ञा है। नगाड़े पर चोट पड़ते ही यह प्रतियोगिता प्रारम्भ हो जाएगी" कह कर कुशध्वज ने प्रहरी को नगाड़े पर चोट करने का संकेत किया।

नगाड़े पर चोट पड़ते ही एकाएक कई राजा लोग धनुष कि ओर दौड़े। वह इसे साधारण धनुष मानकर सबसे पहले उठाने का प्रयास कर रहे थे। एक छोटे से द्वंद्व के उपरांत उनमें से एक विजेता राजा ने धनुष के पास पहुँच कर धनुष उठाने का प्रयास किया। किन्तु धनुष अपनी जगह से हिला भी नहीं। फिर उसने दोनों हाथों के पूरे बल से प्रयास किया। उसका चेहरा लाल हो उठा किन्तु धनुष वहीं का वहीं रहा। अंत में वह राजा लज्जित होकर वापस अपने स्थान पर आकर बैठ गया। धीर स्वभाव के वह लोग जिन्होंने शिव धनुष की महिमा सुन रखी थी, वह धैर्य से अपनी जगह बैठे रहे और अपनी बारी आने की प्रतीक्षा की। सभी राजाओं ने धनुष को उठाने का प्रयास किया किन्तु कोई भी सफल नहीं हो सका। सभी सिर झुका कर जनक की आज्ञा का इंतजार करने लगे।

जनक ने सिंहासन पर बैठे–बैठे ही प्रतिभागी राजाओं से कहा, "यदि राजागण चाहें तो सामूहिक रूप से धनुषोत्तोलन का प्रयास कर सकते है" राजा के स्वर में व्यंग्य था।

तमाम राजा जो सुंदरी सीता को किसी भी प्रकार प्राप्त करना चाहते थे। वह अपनी अधीरता में इसका आकलन करना भूल गए कि सामूहिक रूप से सबने धनुष उठा भी लिया तो उनमे से किस प्रतिभागी को सीता वरेगी। अपनी अधीरता में व्यग्र राजा गण धनुष की ओर लपके। किन्तु धनुष तक पहुँचने के पहले ही उन्हें जनक का व्यंग्य समझ में आया। वह लज्जित होकर वापस अपने आसन की ओर लौट गए। यह लज्जा जनक के व्यंग्य को न समझ पाने की नहीं थी। वरन् अपनी क्षमता की न्यूनता पर थी। हीनता से उपजी लज्जा, आक्रोश फिर क्रोध और हिंसा को प्रेरित करती है। असफल राजागण क्रोधित होकर आक्रामक हो उठे। वह कहने लगे "जनक का यह धनुष लौह निर्मित है। इसे इस स्फटिक वेदी पर जमाकर गाड़ा गया है। इसीलिए हम सब इसे उठाने में असफल रहे। जनक ने इस छद्म धनुष के द्वारा हमारा अपमान किया है। इसको दंड मिलना चाहिये। आइये हम सब मिलकर इसकी कन्या का अपहरण कर लेते हैं। इसके अहंकार का यह दंड ही उपयुक्त होगा।"

राम और लक्ष्मण ने देखा कि कैसे वह हिंसक स्थिति उत्पन्न हो गई, जिसके बारे में विश्वामित्र ने चर्चा की थी। किन्तु वह दोनों निर्विकार भाव से शांत बैठे रहे। विश्वामित्र के मुँह पर मंद हास्य कि रेखा थी।

तभी राजा जनक की घनगर्जन वाणी गूंजी "शाऽऽन्त!"

गर्जना से सभी राजा क्षण भर के लिए हतप्रभ हो गये। उन्होंने देखा राजा कुशध्वज एक विशाल धनुष ताने खड़े थे। वह सभी राजा गण कुशध्वज व उनके अंगरक्षकों के निशाने पर थे। इसके अतिरिक्त सिंहासन के पार्श्व में व अन्य सामरिक महत्त्व के स्थान पर मिथिला के धनुर्धर मात्र उत्पाती राजाओं को ही नहीं बल्कि सभी प्रतिभागियों को

किसी भी समय एक बाण से ही छेदने में समर्थ थे। उत्पाती राजाओं के कंठ शुष्क और अवरुद्ध हो गये। वहीं संभ्रांत राजा जिन्हें शिव धनुष की शक्ति व राजा जनक के पिछले युद्धों का भान था, वह इन राजाओं की बालोचित मूर्खता पर मुस्करा रहे थे।

जनक व्यंग्य भरी वाणी में बोले, "मैंने तो जम्बुद्वीप के सभी वीर क्षत्रियों को इस स्वयंवर में आमंत्रित किया था। किन्तु कोई भी यथोचित पराक्रम का प्रदर्शन नहीं कर सका। मुझे लगता है कि यह पृथिवी वीरहीन हो चुकी है" कहकर जनक ने बड़ी अर्थ भरी दृष्टि राम और लक्ष्मण पर डाली।

"पृथ्वी वीरहीन हो चुकी है" इन शब्दों ने लक्ष्मण पर घन जैसा आघात किया। रघुवंशियों के सभा में रहते हुए...श्री राम की उपस्थित रहते हुए 'वीरहीन'। लक्ष्मण के अंदर का ज्वालामुखी विस्फोट कर गया। उन्हें क्रोध में गुरु और राम कि उपस्थिति भी विस्मृत हो गई। वह एकाएक भुजाएँ तान कर खड़े हो गये और उग्र स्वर में गरजे, "सावधान जनक, सभा में रघुवंशियों के रहते हुए तुम्हें ऐसे शब्द बोलने का साहस कैसे हुआ। इस तुच्छ धनुष को उठाने में असफल राजाओं के कारण तुम्हारा सारी पृथिवी को वीरहीन बताना, तुम्हारा प्रलाप नहीं तो और क्या है?" जिस दीर्घा में अभी तक पूरी शांति थी, उसमें रौद्र रस का अवतरण सबको चकित कर गया। गौर वर्ण जटाधारी लक्ष्मण एकाएक प्रलयंकारी शिव की प्रतिमूर्ति हो उठे थे।

फिर गुरु और राम की उपस्थिति का भान आते ही उन्होंने दोनों को प्रणाम कर कहा, "यदि श्री राम की आज्ञा हो तो मैं इस धनुष को उठाना क्या, एक ही हाथ से इसे उठा कर सम्पूर्ण रंगभूमि की सहस्त्राधिक परिक्रमा करने में मुझे अधिक विलंब नहीं होगा। जब मैं श्री राम का अनुचर इतना करने में सक्षम हूँ तो राम...।"

विश्वामित्र ने हाथ के संकेत से लक्ष्मण को रोक दिया ।

"दाशरथ लक्ष्मण, यह शिव धनुष तो क्षत्रियों के पराक्रम की कसौटी के रूप में ही रखा गया है। कोई भी अपना पराक्रम परखने

के लिए स्वतंत्र है", अपने उत्तेजक शब्दों की अपेक्षित प्रतिक्रिया प्राप्त कर जनक के चेहरे पर संतोष की मुस्कान उभरी जिसे वह तत्परता से छुपा गये।

विश्वामित्र ने आदेश दिया, "वत्स राम ! उठो और रघुवंशियों के पराक्रम का परिचय दो।"

राम के उठते ही सभा में नीरवता छा गई। वह गुरु को प्रणाम कर चले। उनके चेहरे पर उल्लास, विषाद कुछ भी नहीं था। वह मात्र अपने गुरु की आज्ञा पालन हेतु प्रस्तुत हुए। ऐसे स्थित–प्रज्ञ महानुभावों का व्यक्तित्व भी अनोखा होता है। जब राम धनुष वेदी की ओर बढ़े तो लगा सारा सभागार प्रकाशहीन सा हो गया है। केवल राम ही प्रदीप्त थे। एक प्रकाशपुंज की भाँति वह वेदी के समीप पूर्वाभिमुख खड़े हो कर उन्होंने पहले राजा जनक को प्रणाम किया। धनुष के निकट पहुँच बड़ी श्रद्धा से भगवान् शिव के धनुष को प्रणाम कर उसे दाहिने हाथ से स्पर्श किया।

इसके उपरांत जो कुछ हुआ वह अद्‌भुत था। लोग चित्रलिखित से होकर केवल दृष्टा बन कर रह गये मानों मंद गति में दिवास्वप्न देख रहे हों–

राम ने बाएँ हाथ से सहज ही धनुष को उठा कर सिर से लगा कर एक बार फिर प्रणाम किया; एक हाथ से दबाकर उस पर प्रत्यंचा आरोपण किया। फिर प्रत्यंचा को एक हल्की सी टंकार दी। प्रत्यंचा की टंकार से सारा सभागार गूँज उठा। प्रत्यंचा घोष से सबको धनुष की प्रतिघात शक्ति का अनुमान हुआ। तदनंतर राम ने धनुष ऊर्ध्वाभिमुख कर प्रत्यंचा को कान तक खींचा। राम अब भी प्रत्यंचा संधान की मुद्रा में थे कि, अचानक एक विस्फोट हुआ; बहुश्रुत शिव–धनुष दो खंडों में टूट कर धरती पर जा गिरा। सबने देखा कि राम ने झुककर धनुषखंडों को उठा सिर से लगा कर नमन करने के बाद उन्हें सादर उठा कर वेदी पर प्रस्थापित कर दिया। उसके बाद वह मद्धिम चाल से अपने गुरु के समीप जाकर बैठ गए।

धनुषभंग कर लौटते समय भी राम के चेहरे पर किसी भी प्रकार कि गर्वोनुभूति नहीं थी। मात्र गुरु आज्ञा–पूर्ति का संतोष था।

धनुष भंग की ध्वनि इतनी भयंकर थी कि सारी सभा कुछ पल के लिए स्तब्ध हो गई।

सब कुछ सामान्य होने पर सब ओर से धन्य–धन्य के स्वर गूँज उठे। प्रजा, तोरण और मालाओं से फूल निकाल–निकाल कर पुष्प वृष्टि कर रहे थे। जनक हर्षोन्माद से झूमते हुए विश्वामित्र की ओर बढ़े। विश्वामित्र ने आगे बढ़कर आधे रास्ते पर ही जनक को आलिंगनबद्ध कर लिया।

जनक ने विश्वामित्र को प्रणाम करते हुए कहा, "प्रभु, यह आपकी कृपा का फल है कि सीता स्वयंवर की मेरी इतनी कठोर प्रतिज्ञा पूरी ही सकी। सीता विवाह धनुषोत्तोलन के अधीन था। धनुष–भंग होते ही सीता स्वतः राम की अर्धांगिनी हो चुकी है।"

विश्वामित्र जनक के कंधे पर हाथ रख कर बोले "राजन्, दशरथ मात्र धनुष–यज्ञ देखने पधारे थे। वह प्रतियोगिता में भाग लेने नहीं आये। यह मैंने तुम्हें पहले भी चेताया था। तुमने एक सोची समझी नीति के तहत राम को पराक्रम प्रदर्शन के लिए चुनौती दी। यह मात्र एक चुनौती थी, जिसमें स्वयंवर की बाध्यता नहीं थी। इसके अतिरिक्त राम और सीता दोनों की आयु अभी गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने की नहीं हुई। मैंने भी गुरु के नाते मात्र राम को पराक्रम हेतु आदेशित किया था।"

जनक का चेहरा धूमिल हो उठा।

जनक को आश्वस्त करते हुए विश्वामित्र फिर बोले, "मैं सीता–राम के परिणय प्रस्ताव को अस्वीकार नहीं करता। किन्तु नैसर्गिक अभिभावक तो पिता ही होता है। अतः राम के विवाह की स्वीकृति का अधिकार इनके पिता दशरथ को ही है।"

"जनक, तुम दशरथ को यह शुभ संदेश भेजते हुए उन्हे मिथिला में आमंत्रित करो। अयोध्या और मिथिला के सम्बन्धों को मधुरतम बना कर दशरथ भी प्रसन्न ही होंगे।"

जनक के चेहरे पर से अवसाद के बादल छँट गये उन्होंने अपने श्रेष्ठतम मंत्री को आमंत्रण के साथ शीघ्रता से अयोध्या प्रेषित कर दिया।

इसके बाद गौरी ने कुछ देर के लिए अपनी वाणी को विश्राम दिया। इस विराम से विश्वामित्र और कौस्तुभ दोनों की तन्मयता भंग हुई। उन्होंने गौरी की ओर प्रश्न भरी दृष्टि से देखा। गौरी ने उन्हें प्रणाम कर–

"क्षमा करें गुरु देव उक्ति है।

'सुखस्यांतरं दुखं, दुखस्यांतरं सुखं।
पर्यायेणोपसर्पन्ते नरेनेमिमरा इव॥'

जीवन में सुख (हर्ष) के बाद दुख (विषाद), दुख (विषाद) के बाद सुख (हर्ष) एक चक्र की भाँति आते रहते हैं।

अतः शैव–धनुष भंग और राम सीता स्वयंवर के अतीव उत्साह और हर्ष के उपरांत विषाद की आँधी तो आना ही था। वह आँधी कराल वेशी महर्षि परशुराम के रूप में आई। महर्षि की पितृ एवं गुरु भक्ति विख्यात थी। पिता और गुरु के अपमान अथवा अपकृति की संभावना भर होने पर, ऋषिवर प्रलयंकारी हो उठते थे। उनका आततायी स्वरूप क्षत्रियों के प्रति द्वेष भी सर्व विदित था। बड़ा से बड़ा क्षत्रिय वीर उनके कुठार के स्मरण मात्र से आतंकित हो उठता था। ऐसे भार्गव परशुराम मिथिला से ही हो कर गुजर रहे थे। विदेह जनक पर उनका बड़ा स्नेह था सो वह मिथिला राजभवन की ओर चल पड़े। मार्ग में उन्हें शिव धनुष तोड़े जाने की सूचना मिली। एक सामान्य नागर ने उन्हें हर्षातिरेक में बता डाला।

गुरु शंकर के धनुष की यह अवमानना...! पहले तो ऋषिवर स्तब्ध रह गये फिर, फिर एकाएक बहुत दिनों से शांत पड़े क्रोध का ज्वालामुखी धधक उठा। उस क्रोध की पहली–पहली ज्वाला तो जनक की ओर गई। "विदेह बनने का स्वांग करता है। जनक की धृष्टता तो देखो, देवाधिदेव शंकर का धनुष तोड़ना उसने अपनी मानस पुत्री सीता

के विवाह की शर्त रखी! लगता है जनक की आयु पूरी हो चुकी। इसीलिए वह मुझे व मेरे पराक्रम को भूल गया। विख्यात शैव धनुष प्रतियोगिता में रखने की वस्तु है...!"

यज्ञ शाला द्वार से ही ऋषि की गर्जना सुन कर सभी दायें–बाएँ होने लगे। सभा में उपस्थित क्षत्रिय गण किसी न किसी आड़ में दुबक गये। जनक और विश्वामित्र को विषम परिस्थिति का आभास हो गया। जनक परशुराम जी की अगवानी को आगे जबतक बढ़े, परंतु तबतक फरसाधारी स्वयं प्रकट हो गये।

सभा में गर्जना गूँजी "मूढ़ जनक ! यह पापकर्म करने का विचार भी तेरे मन में आया भी कैसे? तेरी मति मारी गई है क्या? मेरा भी भय तुझे नहीं रहा जो तूने इस वंदनीय धनुष को द्यूत के पाँसे की भाँति अपनी पुत्री के स्वयंवर के रूप में प्रयोग किया?" सुनयना व अन्य नारियाँ सीता को लेकर अंतःकक्ष को चली गई।

राजा जनक ने पहले तो साष्टांग धरती पर लेट कर परशुराम जी को प्रणाम किया। प्रणति से ब्राह्मण का क्रोध अवश्य कम होता है। फिर जनक उठ कर करबद्ध हो कर नमित नयन बोले, "हे देव ! सीता की सुंदरता की ख्याति ने आर्यावर्त में हर पात्र–अपात्र के मन में उसके वरण की लालसा जाग्रत कर दी। सभी राजा साम, दान, दंड, भेद से सीता को प्राप्त करना चाहते है। इसकी वजह से मिथिला को कई युद्ध लड़ने पड़े। विफल होने पर सभी राजाओं ने सामूहिक रूप में एक साथ आक्रमण कर दिया। मुझे लाचारी में आपके द्वारा प्रदत्त शिव धनुष को उठाना पड़ा। तभी उनलोगों का शमन हो पाया।"

परशुराम वैसे ही कुठार लिए खड़े थे, अभी तक प्रहार नहीं किया। जनक ने वैसी ही विनम्र मुद्रा में बोलते रहे, "ऐसी परिस्थितियों में मैंने निर्णय किया कि सीता का विवाह ऐसे शक्तिशाली पुरुष से होना चाहिए जो इसकी रक्षा करने में सक्षम हो। भरत खंड के सर्वश्रेष्ठ वीर के परीक्षण हेतु मुझे शिव धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाने की शर्त रखनी पड़ी। आप तो जानते ही हैं कि इस धनुष को उठाना ही पराक्रम की कसौटी

है। प्रत्यंचा चढ़ाना तो और भी दुष्कर है। यज्ञ शाला में कोई भी इस दिव्य धनुष को हिला भी नहीं सका, परंतु महर्षि विश्वामित्र....." कहते–कहते जनक रुक गये।

विश्वामित्र का नाम सुनते ही ऋषि की क्रोधाग्नि विश्वामित्र की ओर मुड़ गई।

"विश्वामित्र...! क्या विश्वामित्र ने यह कुकृत्य किया" परशुराम विश्वामित्र की ओर आग्नेय आँखों से देखते हुए गरजे।

तभी एक अद्‌भुत व्यक्तित्व वाला युवक आगे बढ़ा। परशुराम उसे देखते ही रह गये। उन्होंने बहुत वीरों को देखा पर ऐसी गठन, ऐसी काया नहीं देखी। लगा वीरत्त्व मानव शरीर धारण कर उनके सम्मुख खड़ा है। परशुराम विस्मित हो उठे। युवक का मस्तक प्रणति में झुका था। युवक बहुत ही विनम्र स्वर में बोला, "ऋषिवर, आप द्वारा प्रदत्त धनुष को आपका कोई अभिन्न दास ही स्पर्श कर सकता है। किसी अन्य में इतना साहस कहाँ?"

राम के व्यक्तित्व व उनकी नम्रता से मुनि का क्रोध कुछ कम हुआ। अनायास ही भार्गव के मुँह से "विजयी भव, दीर्घायु भव" का स्वस्ति वचन प्रस्फुटित हुआ।

पर अगले ही क्षण ज्वालमुखी फिर फूटा "दास, शिष्य या पुत्र ऐसा कृत्य कर ही नहीं सकता। विश्वामित्र तुम मुझसे और मेरे क्रोध से भली–भाँति परिचित हो। तुम मुझे साफ–साफ बताओ कौन है वह अधम।"

राम परशुराम के सम्मुख वैसे ही प्रणत खड़े रहे। विश्वामित्र से कोई उत्तर न पा परशुराम ने अपना परशु ताना...।

राम पर परशु संधान...? रामानुज जो अभी तक धनुष–भंग की प्रसन्नता और उत्साह में विमुग्ध थे, एकाएक बड़वानल की भाँति धधक उठे। राम पर परशु संधान...? वह अनपेक्षित तीव्रता के साथ परशुराम के सम्मुख आ खड़े हुए। उनकी आँखें क्रोध की ज्वाला से दहक रही थीं, साँसो का वेग तीव्र हो उठा। विशालकाय तना शरीर, उन्नत शिर

के एक तरफ विशाल धनुष व दूसरी ओर तूरीण के कारण लक्ष्मण तीन शिर वाले विशाल सर्प की भाँति प्रतीत हो रहे थे। उनकी लंबी फुफकारती हुई साँसों से लगता था स्वयं शेषनाग राम की रक्षा हेतु मूर्तिमान हो उठे।

लक्ष्मण के अचानक ही रौद्र वेश में बीच में आ जाने से परशुराम कुछ क्षण के लिए हत्प्रभ हुए, किन्तु अगले ही क्षण दो पग पीछे हट पैर को पीछे रोप कर किसी भी आक्रमण को झेलने को प्रस्तुत हो गए। दोनों इसी मुद्रा में कुछ समय आक्रमण के लिए सन्नद्ध दिखे। किन्तु किसी ने भी आक्रमण नहीं किया।

लक्ष्मण ने अनुभव किया कि परशुराम वार नहीं करना चाहते; केवल आक्रमण रोकने के निमित्त यह मुद्रा धारण किए हैं, तो उनकी क्रोधाग्नि कुछ शांत हुई। वहीं लक्ष्मण का गौरवर्ण, सबल देहयष्टि, उन्नत भाल पर विशाल जटा में भार्गव को अपने इष्ट महादेव की रौद्र भंगिमा की सुधि आई। उन्होंने विश्वामित्र की ओर देखा।

विश्वामित्र ने आगे आकर बताया कि यह दोनों रघुकुल तिलक राजा दशरथ के पुत्र हैं, और अब राम का विवाह सीता से होना निश्चित हुआ है। दशरथ के नाम से भी ऋषि का क्रोध कुछ और शांत हुआ। दशरथ अत्याचारी, आततायी क्षत्रियों में से नहीं थे। युद्ध में देवताओं के सहायक होने के कारण परशुराम, दशरथ का सम्मान भी करते थे। परशुराम ने अपना कुठार नीचे किया, तभी राम का कर स्पर्श लक्ष्मण कंधे पर पड़ा। लक्ष्मण की रौद्र मुद्रा में परिवर्तन आया। वह एकाएक शांत होकर गुरु विश्वामित्र के साथ जा खड़े हुए।

लक्ष्मण के हटने पर राम अब सीधे भार्गव के सम्मुख थे। सीता से राम का विवाह! मतलब राम ने ही शिव धनुष तोड़ा; यह सोच एक बार फिर उनमें क्रोध की ज्वाला फूटी। किन्तु राम को वैसे दोनों हाथ जोड़े, प्रणत खड़े देख वह कुछ और नरम पड़े। राम की भव्य आकृति, शिव–धनुष–भंजन में सक्षम पराक्रम और विश्वामित्र का संग...। कहीं ऐसा तो नहीं जिस सूर्य के उदय होने की भविष्यवाणी विश्वामित्र कर रहा था वह नायक, यही राम तो नहीं?

परशुराम ने विश्वामित्र की ओर प्रश्न वाचक दृष्टि से देखा; विश्वामित्र ने सहमति में अपना सिर हिलाया।

परशुराम ने अपना परशु नीचे कर लिया और राम से बोले, "समस्त जंबुद्वीप में मात्र दो महान दैवी धनुष थे। एक शिव–धनुष जो यहाँ टूटा पड़ा है। दूसरा वैष्णव–धनुष मेरे पास है। राम! तुम यह वैष्णव धनुष मुझ से लो और इसे संधान करो। इसे संधान कर तुम अपनी शक्ति की परीक्षा दो। यदि तुम ऐसा कर सके तो मैं स्वीकार कर लूँगा कि विश्वामित्र का चयन, खरा है।"

राम को धनुष प्रदान करने को भार्गव जैसे ही तत्पर हुए, राम ने अत्यंत लाघव के साथ उनके हाथ से धनुष लेकर संधान हेतु प्रत्यंचा खींची। राम के इस हस्त–लाघव से पूरी सभा चमत्कृत हो गई। स्वयं परशुराम पर भी इसका अभीष्ट प्रभाव हुआ। पूरा धनुष मंडलाकार होने को था, तभी विश्वामित्र का कोमल स्वर राम के कानों में पड़ा।

"सावधान वत्स, इस दिव्य धनुष को खंडित नहीं होना चाहिये। भविष्य में तुम्हें इसकी आवश्यकता होगी।"

प्रत्यंचा खींचता राम का हाथ गुरु की आवाज सुन कर रुक गया। उन्होंने दोनों हाथों से नम्रता पूर्वक वैष्णव धनुष परशुराम को वापस करना चाहा।

किन्तु यह क्या...! परशुराम ने वह धनुष राम को ही वापस करते हुआ कहा, "नहीं, राम, मेरा काम अब समाप्त हुआ। समय के साथ लोकनायक को भी बदलना होगा। अब यह धनुष तुम्हें ही शोभा देगा। पर सावधान! इसका उपयोग केवल लोकरंजन व दुष्टदलन में करना। राज्य विस्तार की लिप्सा में नहीं।"

राम ने धनुष को माथे से लगाकर महर्षि परशुराम को झुक कर प्रणाम किया।

प्रणति में झुके राम के ऊपर दोनों हाथों से आशीष देते हुए बोले, "मेरा कार्य अब समाप्त होता है। मैं अब निश्चिंत होकर हिमालय जा रहा हूँ" फिर फरसे की ओर देखते हुए कहा– "वहाँ मानसरोवर में

इसे महादेव को समर्पित कर, क्षात्र वेश त्याग तपस्या–रत होऊँगा" कहकर परशुराम जनक सभा से चल दिये।

जाते समय भी उनके चरणो में दृढ़ता थी किन्तु धमक नहीं थी। प्रत्येक पग से जैसे पृथिवी को आश्वस्त करते हुए जा रहे थे। उनके चेहरे पर रोष और अमर्ष की स्थान पर अब पूर्ण शांति थी।

----------x------x------x----------

परशुराम के जाने के बाद सबके सशंकित मन हर्षित हो उठे। जनक का मन भार्गव के आशीष तथा भविष्यवाणी से आल्हादित हो उठा। लक्ष्मण वैष्णव धनुष का निरीक्षण कर रहे थे। वहीं राम निर्लिप्त भाव से अपने गुरु के पार्श्व में खड़े थे।

धनुष–भंग के बाद विश्वामित्र अपने शिष्यों और मुनिमंडली के साथ वापस डेरे पर लौट आए। रास्ते भर लक्ष्मण दिव्य वैष्णव धनुष को बार–बार बहुत उत्सुकता से देख निरीक्षण कर रहे थे।

डेरे में सब मुनियों के विश्राम हेतु चले जाने के बाद विश्वामित्र राम से बोले, "राम, यह धनुष अद्वितीय है। वर्तमान परिस्थियों में इस धनुष का अयोध्या में रहना उचित नहीं है। अतएव इस धनुष को तुम मुझे दे दो। उचित समय पर यह तुम्हें उपलब्ध हो जाएगा।"

राम ने शांत भाव से लक्ष्मण को देखा। लक्ष्मण ने तत्काल ही धनुष को अपने नीले उत्तरीय में लपेट कर बड़ी श्रद्धा से विश्वामित्र को दे दिया। विश्वामित्र ने वह धनुष अपनी कुटिया के एक कोने में स्थापित कर दिया।

अगले दिन दोनों भाई नित्य क्रिया से निवृत्त होकर गुरु की कुटी की ओर चले तो उनको पता चला कि मुनिमंडली कल रात में ही मिथिला से प्रस्थान कर गई।

गुरु की कुटिया के कोने में वैष्णव धनुष भी नहीं था!

----------x------x------x----------

मुनि मंडली के चले जाने के बाद संध्या गुरु के समक्ष आज

केवल राम लक्ष्मण ही उपस्थित थे। विश्वामित्र की मुद्रा गंभीर थी। वह आँख बंद किए जैसे किसी गहरे विचार में मग्न हों। सम्भवतः उन्हें राम और लक्ष्मण की उपथिति का भान भी नहीं रहा। अतः शिष्य भी मौन थे। लगभग आधी घड़ी बाद गुरु की आँखें उन्मीलित हुईं। सामने दोनों को बैठा देख उनकी आँखों में स्नेह झलका। फिर हौले से मुस्कराये, "आज तुम्हारे पास कोई प्रश्न नहीं है, रामानुज।"

लक्ष्मण इस अचानक प्रश्न से थोड़ा असहज हुए। सदैव जिज्ञासु ने जैसे प्रश्न करने की अनुमति लेने के लिए राम की ओर देखा। राम की दृष्टि निरंतर गुरु पर टिकी थी; जैसे वह अदृश्य माध्यम से गुरु से संदेश प्राप्त कर रहे हों। जब गुरु और शिष्य में मानसिक तरंग–सेतु स्थापित हो जाता है तब श्रव्य माध्यम की आवश्यकता नहीं रह जाती।

"गुरुदेव, दक्षिणापथ में ऐसा क्या है कि पहले अगस्त्य मुनि और बाद में विश्वविजयी विश्वरथ के सफल प्रयाणों के उपरांत कुछ समय में ही वहाँ अत्याचारी रक्ष संस्कृति रक्तबीज की तरह पुनर्जीवित हो उठती है।"

विश्वामित्र प्रसन्न होते हुए बोले, "रामानुज, मैं स्वयं इसी समस्या पर मनन कर रहा था। विश्वरथ और अगस्त्य दोनों ही ने, अपने अभियान में ऋजु रेखा में गतिवान हो वेगवान शूल या उल्का की भाँति एक निश्चित लक्ष्य का भेदन किया। उन्होंने अत्याचार के तने पर ही प्रहार किया। फिर भी अत्याचार की जड़ें बहुत मजबूती से पूरे दंडक वन में जमी रह गईं। इन्हीं बची जड़ों से पोषित होकर अत्याचारी वृक्ष फिर– फिर लहलहाता रहा। इन दोनों के अभियान ने ढोकली की भाँति तालाब के मध्य का गंदला जल उलीचा। जिस प्रकार ढोकली से जल उलीचे जाने के बाद, आस पास का जल उस उलीचे गए जल का स्थान शीघ्रता से ले लेता है; ठीक उसी प्रकार राक्षस संस्कृति की जड़ एक नायक के नष्ट होते ही दूसरे नायक को खड़ा कर देती है।"

"भविष्य के प्रयाण में इस तथ्य का स्मरण रखना होगा। अभियानकर्ता को बाहरी परिधि से ही छुपी हुई जड़ों को निर्मूल करते हुए वृक्ष के तने तक पहुँचना होगा। परन्तु ऐसा प्रयाण कष्ट साध्य होने के साथ–साथ दुरूह भी होगा। ऐसे संधान के लिए असीमित धैर्य और समय अपेक्षित है।"

"और यह जड़ें कहाँ से कहाँ तक फैली हैं?" लक्ष्मण ने आगे जिज्ञासा की।

"समूचे विंध्याचल के दक्षिणी प्रदेश से लेकर सम्पूर्ण द्रविड़ प्रदेश तक। यह एक बहुत बड़ा भूभाग है, जो घने जंगलों, पर्वतों, और तीव्र प्रवाहिनी नदियों के जाल से परिपूरित है। इनमें यत्र तत्र ऋषियों के आश्रम स्थित हैं, किन्तु वह आश्रम भी धीरे–धीरे एक निश्चित योजना के अंतर्गत राक्षसों द्वारा नष्ट किए जा रहे हैं। राक्षस निःशस्त्र ऋषियों पर इतने अत्याचार करते हैं कि ऋषियों को वहाँ से पलायन करना पड़ता है। सूचना तो यहाँ तक है कि निशाचरों के कुछ नरभक्षी वंश आश्रमवासियों को मार कर खा भी जाते हैं। इसमें कितना तथ्य और कितना मिथक यह निर्णय करना कठिन है। फिर भी यह निर्विवाद है कि मृत्यु अथवा प्रतारणा के भय से ऋषिगण आतंकित हैं। दंडक वन के एक निश्चित क्षेत्र में अब भी अगस्त्य ऋषि की शक्ति का प्रभाव है। अगस्त्य के भय से राक्षस गण उस क्षेत्र में जाने का साहस नहीं कर पाते। इसी से अधिकतर आश्रमवासी अब अगस्त्य ऋषि के प्रभाव क्षेत्र में ही बसने का प्रयास कर रहे हैं।"

लंकेश

विश्वविजयी रावण कुबेर को लंका से विस्थापित कर, उसी के बहाने सुदूर उत्तर में स्थित स्वर्ग लोक को भी जीत चुका था। भरतखंड के दक्षिण में महाबली शंबर अगस्त्य और विश्वरथ के सामूहिक प्रयाण में मारा जा चुका था। अब लंका के उत्तर में मात्र वानर राजा बालि को छोड़ रावण की सत्ता को चुनौती देने वाला कोई नहीं रह गया था। रावण ने बालि से पराजित होने के उपरांत भी कूटनीति से उसे अपना

मित्र बना लिया था। भरतखंड के लगभग पूरे दक्षिणावर्त में प्रभुत्व स्थापित करने के बाद अब उसकी कुदृष्टि आर्यावर्त पर थी।

आर्यावर्त में वैदिक संस्कृति अपने चरमोत्कर्ष पर थी। यह बात भी सत्य है कि आर्यावर्त में मूल वैदिक धर्म में भी थोड़े बहुत परिवर्तन परिलक्षित होने लगे थे। मूर्ति पूजा व अवतारवाद सम्मिलित हो चुका था। अवतारवाद के फलस्वरूप मूर्ति पूजा के साथ व्यक्ति–पूजा भी अब धर्म में समायोजित हो चुकी थी। ध्यातव्य है कि व्यक्ति पूजा जहाँ चाटुकारिकता को जन्म देती है वहीं चाटुकारों से घिरे होने के कारण शासक प्रजा और राज्य के बारे में सही सूचनाओं से वंचित हो जाता है। शासन–तंत्र पंगु होने लगता है। यह स्थिति निकट या सुदूर स्थित महत्वाकांक्षी योद्धा को आक्रमण हेतु उत्साहित करती है।

समस्त आर्यावर्त वर्तमान में कुछ ऐसी ही परिस्थिति से जूझ रहा है, और अब लंकेश की गिद्ध–दृष्टि में है।

अभी तक अपने को अजेय समझने वाला रावण जबसे मिथिला से लौटा; सशंकित रहने लगा था। उसे बार–बार सीता की आँखों की मशाल और उस पर मँडराते विशाल भँवरे और उसकी परिणति का स्मरण हो उठता था। हालाँकि, त्रिकूट पर्वत पर स्थित लंका किसी भी आक्रांता के लिए दुर्जेय मानी जाती थी थी। फिर भी आशंकित रावण ने लंका की आंतरिक और सागर तट से दुर्ग की दीवार की सुरक्षा बढ़ा दी थी।

दंडक वन में अपने सेनापति बंधु खर, दूषण और त्रिशिरा को सावधान रहने व किसी भी प्रकार की संदिग्ध गतिविधि पर दृष्टि रखने तथा आकस्मिकता से तुरंत निपटने के लिए, सन्नद्ध रहने का आदेश दिया।

अयोध्या

इधर राम लक्ष्मण के विश्वामित्र के साथ जाते ही कैकेयी ने भरत को विशेष सैन्य प्रशिक्षण हेतु अपने मायके भेज दिया था। अब वह आगे की संभावनाओं व नीति पर विचार कर रही थी। इस कूट–प्रबंध में कैकेयी को मन्थरा, व मन्थरा के साथ कैकय देश से आई कुछ चुनी हुई सेविकाओं का सहयोग प्राप्त था। यह सेविकाएँ महल में बिखर कर संवेदनशील सूचनाएँ एकत्र करतीं और मन्थरा के माध्यम से ही कैकेयी तक पहुँचातीं। कैकेयी राजा दशरथ को सभी रानियों में सबसे प्यारी और विश्वासपात्र थी। शैशव में जो कैकेयी राम को भरत से अधिक स्नेह करती थी, वही अब अपने स्वयं के पुत्र को सिंहासन पर प्रतिष्ठित करने के लिए राम के विरुद्ध षड्यंत्र बुनने लगी थी।

राजा दशरथ महल में चल रही इस गुप्त–योजना से अनभिज्ञ थे। इस समय वह एकमात्र विश्वामित्र के साथ गये अपने पुत्रों की सुरक्षा हेतु व्यग्र थे। वशिष्ठ के तमाम समझाने के उपरांत भी राजा की उद्विग्नता समाप्त नहीं हो रही थी। कुमारों के गंगा के किनारे तक पहुँचने, विश्वामित्र के द्वारा दोनों कुमारों को 'बला' व 'अतिबला' शक्तियों का मासपर्यंत अभ्यास, आदि की सूचना तो उनके गुप्तचर देते रहे। परंतु गंगा पार कर ताड़का वन में प्रवेश करने के बाद उन्हे कोई सूचना नहीं प्राप्त हो रही थी। ताड़का वन में किसी नागर का प्रवेश निश्चित मृत्यु का कारण बन सकता था। ऐसा ताड़का का आदेश था।

कई मास तक सूचना न मिलने पर दशरथ का मन अप्रिय घटना के भय से विचलित हो उठा। उनके अनुरोध पर वशिष्ठ ने चुने हुए गुप्तचरों की एक टोली को किरात वेश में ताड़का वन भेजा। यह गुप्तचर किरातों की भाँति मधु और अन्य वन संपदा वन से एकत्र कर, वनवासियों के ग्राम में बेचते हुए सिद्धाश्रम तक निर्विघ्न पहुँच गये।

सकुशल सिद्धाश्रम पहुँचने पर वह गुप्तचर स्वयं चकित थे। सिद्धाश्रम वासियों से उन्हें ज्ञात हुआ कि अब यह स्थान राक्षसों से निर्मूल होकर पूर्ण रूप से निरापद है।

मारीच के जीवित भाग जाने से वीरकेतु ने वनवासियों को किसी भी अनजाने व्यक्ति को कोई भी सूचना देने से निषेध कर रखा था। उसने मुनिमंडली के साथ कुमारों की गमन दिशा भी बताने से मना कर रखा था।

अतः वह गुप्तचर आश्रम के निरापद होने और कुमारों का मुनिमंडली के साथ प्रस्थान करने के अलावा कोई विशेष सूचना नहीं ला सके। फिर भी सिद्धाश्रम का आपदा निर्मूलन व राजकुमारों के वहाँ से सकुशल प्रस्थान का समाचार प्राप्त कर दशरथ अपने प्रारब्ध और इष्टों को धन्यवाद दे रहे थे।

इस अपूर्ण सूचना से जहाँ दशरथ कुछ आश्वस्त हुए वहीं कैकेयी निराश हुई। पूर्ण सूचना के बिना वह आगे की नीति नहीं निर्धारित कर सकती थी। फिर भी, अपनी अन्तः–अनुभूति से उचित समय मान, उसने भरत को अपने मायके से बुलाना निश्चित किया।

ऐसी परिस्थितियों के मध्य, मिथिला के मंत्री राम द्वारा धनुष–भंग की सूचना लेकर अयोध्या पहुँचे।

दशरथ मिथिला से मंत्री के अचानक आने की सूचना से पहले कुछ अशांत हुए। कारण–मिथिला राज्य और अयोध्या के बीच वर्षों से द्वेष अथवा मैत्री, किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं था। दोनों ही राजा वृद्ध हो रहे थे अतः वह अपने राज्य और उसके उत्तराधिकार की चिंता में अधिक व्यस्त रहते थे। दशरथ को तो चौथेपन में पुत्र लाभ हुआ भी, वहीं जनक और उनके भ्राता कुशध्वज के भी मात्र कन्याएँ ही थीं...।

राजा दशरथ इसी ऊहापोह में व्यस्त थे कि प्रहरी ने मिथिला के मंत्री के आगमन की घोषणा की। दशरथ ने मंत्री का स्वागत कर उसे उचित स्थान देकर कहा, "मंत्रिवर, क्षत्रिय कुलभूषण, विदेह राज सीरध्वज कुशल से तो हैं?"

मंत्री प्रसन्न मुद्रा में उत्साह से बोला, "रघुवंश मणि, आपकी कृपा से मिथिला राज में सभी कुछ कुशल से है। वर्तमान में आपके कुलदीपक राम और लक्ष्मण के कारण तो मिथिला में उत्सव और उत्साह पसरा है।"

"राम और लक्ष्मण मिथिला में? अयोध्या की समस्त खुशियों के आधार राम–लक्ष्मण के कारण मिथिला में उत्सव और उत्साह...!" दशरथ इन सब सब सूचनाओं का ठीक से संज्ञान लिये बिना ही आतुरता और व्यग्रता से बोले, "राम और लक्ष्मण! हाँ, हाँ, बोलिये मंत्रिवर! मेरे दोनों पुत्र कुशल से तो हैं; उनके गुरु महर्षि विश्वामित्र भी तो उन दोनों के साथ थे; महर्षि विश्वामित्र कहाँ है; मेरे पुत्र एकाएक मिथिला कैसे पहुँचे?"

दशरथ ने एक ही साँस में ही कई प्रश्न पूछ डाले।

"राजन्, आपके पुत्रों ने अपने पराक्रम से वह उपलब्धि प्राप्त की, जो अभी तक कोशल और मिथिला की सेनायें नहीं कर सकीं। राम और लक्ष्मण ने अपने पराक्रम से ताटका और सुबाहु को पूरी सेना समेत मार कर सिद्धाश्रम व सारे प्रदेश को निरापद कर दिया", मंत्री ने कुछ रुक कर शब्दों को व्यवस्थित करते हुए आगे कहा, "राजन्, आपको ज्ञात होगा, राजा सीरध्वज के पास एक दिव्य और विशाल शिव–धनुष है और उनके एक सुंदरी कन्या सीता भी है। राजा ने अपनी उसी रूपमती कन्या के स्वयंवर का आयोजन किया था। प्रतिभागियों के सामने चुनौती थी कि जो वीर, जनक के शिव–धनुष को उठा कर उस पर प्रत्यंचा का संधान करने में सफल होगा, सीता उसी को पति रूप में वरण करेगी। जंबु द्वीप से आए बड़े–बड़े महावीर उस धनुष को उठाना क्या हिला भी नहीं सके, तब, गुरु विश्वामित्र की आज्ञा से राम धनुष उठाने को प्रस्तुत हुए। राम ने वह धनुष बड़ी आसानी से उठा लिया। परंतु राम के धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने के प्रयास में वह धनुष दो खंड हो गया।"

उनके राम के प्रताप से 'शिव–धनुष' दो खंड हो गया...वह विस्मित हो उठे...।

फिर अचानक राजा दशरथ खुशी से विह्वल हो उठे, "तो क्या सीता ने राम को वरमाला पहनाई? क्या सीता ने राम को पति रूप में वरण कर लिया?" राजा ने प्रसन्नता से पूछा।

"नहीं राजन्, अभी तक तो नहीं।"

दशरथ प्रसन्नता के आवेग की गति कुछ मद्धिम हुई।

"महर्षि विश्वामित्र के अनुसार राम के गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने में कुछ वर्ष अभी शेष हैं। ऐसी परिस्थिति में मुनि के अनुसार आपकी अनुमति के बगैर विवाह सम्भव नहीं। अतः राजा सीरध्वज ने मुझे इसी निवेदन के साथ प्रेषित किया है। उन्होंने आपसे प्रार्थना की है कि, यदि आप को सम्बन्ध स्वीकार हो तो शीघ्र मिथिला पधारने की कृपा करें। मिथिला की सारी प्रजा के साथ जनक परिवार आपके स्वागत में पलक–पाँवड़े बिछाए है। इस पत्र के साथ राजा ने अपना विस्तृत कुल परिचय भी भेजा है।"

"अरे विदेहराज के कुल व स्वयं उनको कौन नहीं जानता? कोई भी सम्राट् उनसे सम्बन्ध करने में गौरवान्वित अनुभव करेगा।" फिर दशरथ मंत्री के स्वागत और निवास की उचित व्यवस्था करने का आदेश देकर तत्काल अपने कुल–गुरु वशिष्ठ को सूचित करने चल पड़े। जाते–जाते यह शुभ समाचार अंतःपुर को भी पहुँचाने का आदेश दिया।

राजा दशरथ ने मिथिला से आया शुभ समाचार वशिष्ठ को बताया। राम और लक्ष्मण की शौर्य गाथा सुनकर, वशिष्ठ अति प्रसन्न हुए, "दशरथ, मैंने स्वयं तुमसे विश्वामित्र के सानिध्य से तुम्हारे पुत्रों के कल्याण की भविष्यवाणी की थी।"

"यह बहुत समय की बात नहीं है जब विश्वामित्र ने राजा विश्वरथ के रूप में सारे भरत खंड को राक्षसों के अत्याचार से मुक्त कराया था। उस समय विश्वरथ के मार्गदर्शक पूज्य महर्षि अगस्त्य थे। विश्वामित्र से प्रशिक्षित होने से तुम्हारे दोनों पुत्र अब महर्षि अगस्त्य, विश्वामित्र की शिष्य परंपरा में सम्मिलित हो गए हैं। यह उन बालकों

के लिए ही नहीं, समस्त रघुवंश के लिए गरिमा का विषय है। वे दोनों अपने गुरुओं की भाँति ही दुनिया के आधुनिकतम अस्त्र–शस्त्रों के प्रयोग में निष्णात हो चुके हैं। अब इन दोनों को आप स्वयं राजनीति के गूढ तत्व का ज्ञान और प्रदान करें। ईश्वर मंगल करेगा।"

अंजलिबद्ध कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए दशरथ ने पुनः गुरु से निवेदन किया, "गुरुदेव, अब मिथिला प्रस्थान का मुहूर्त और तैयारी का आदेश करने की कृपा करें। मैं ननिहाल से भरत को बुलाने का प्रबंध करता हूँ।"

"नहीं राजन्, उसकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। भरत आज या कल तक अयोध्या पहुँचने ही वाले होंगे। कैकेयी पहले ही उन्हें बुलाने का प्रबंध कर चुकी हैं।" कह कर गुरु मुस्कराये।

"क्या कैकेयी को यह शुभ समाचार पहले से ज्ञात था?" दशरथ आश्चर्य से बोले।

"नहीं, कैकेयी को यह सब पहले से ज्ञात नहीं था। परंतु राजन्, स्त्रियों का अतींद्रिय ज्ञान काफी विकसित होता है।"

----------x------x------x----------

जब तक दशरथ महल पहुँचें, तब तक नगर तथा महल में राम के विवाह का समाचार फैल चुका था। सब जगह उत्सव प्रारम्भ हो चुके थे। सबकी बधाई व शुभकामनाएं स्वीकार करते हुए वह अंतःपुर पहुँचे। कौसल्या और सुमित्रा आनंदातिरेक में थीं। दोनों के पुत्रों की उपलब्धि ही ऐसी थी। वहीं कैकेयी अनमने मन से मिली।

"राजन्, आपने माँ से बगैर विमर्श के ही राम का विवाह निश्चित कर दिया" कैकेयी के स्वर में पर्याप्त उपालंभ था।

"क्या करूँ? राम के धनुष भंग करते ही वीर्य–शुल्का सीता उसकी अर्धांगिनी हो गई। उसमें मेरी या किसी और की अस्वीकृति का प्रश्न शेष ही नहीं रहा।"

"नहीं राजन्, ऐसा नहीं है। विश्वामित्र ने विवाह आपकी अनुमति पर छोड़ दिया है। सीता ने अभी तक राम को वरमाला नहीं

पहनाई। राम के विवाह में उसकी माँ कैकेयी को मुझे थोड़ा सा महत्व दे देते। मैं इस सम्बन्ध को अस्वीकार थोड़ी करती।"

कैकेयी के संज्ञान में था, कि राम के विवाह का अंतिम निर्णय ऋषि ने स्वयं दशरथ के अधीन किया था। दशरथ आकलन नहीं कर सके कि यह तथ्य स्त्री–अन्तर्ज्ञान का विषय न होकर विशुद्ध गुप्तचरी का था। अतः कैकेयी के आंतरिक गुप्तचर संगठन के बारे में अनुमान ही नहीं कर सके।

ऐसे ही निकटवर्ती अज्ञान को दीपक तले अंधकार की संज्ञा दी गई है।

कैकेयी ने एक बार फिर झनकते हुए कहा, "जाने दीजिये आप मुझे राम की माँ ही कब मानते हैं। और फिर सम्राट् का निर्णय ही सर्वमान्य है।"

दशरथ का सारा उत्साह समाप्त हो गया। एक अनजाना अपराधबोध उनके चेहरे पर छा गया। स्वयं उनको भी भान नहीं था, कि वह कैकेयी के सम्मुख बेबस और निरुत्तर क्यों हो जाते थे। उसके किसी भी आक्षेप का समुचित उत्तर देने में सर्वदा अपने को असमर्थ पाते थे। वह अटपटा कर कुछ बोलने का प्रयास कर ही रहे थे कि, प्रहरी ने भरत के ननिहाल से वापस आने की सूचना दी। कैकेयी उपालंभ भूल कर भरत का स्वागत करने चल दी। दशरथ के चेहरे पर भी प्रसन्नता छा गई।

यह प्रसन्नता कैकेयी के कठोर प्रश्नों से बचने के सुयोग की थी अथवा भरत के आगमन की; यह स्वयं दशरथ ही जानते होंगे। राजा चुपचाप कौसल्या के कक्ष में चले गए। आजकल उसी के महल में उन्हें सबसे अधिक विश्रांति मिलती थी।

बारात के सभी उपक्रम भरत के देखरेख में हुए। वधू के लिए उपहार चार छकड़ों में सजाये गए। जनक के परिजन, प्रजाजन, व नगरवासियों के लिए अद्‌भुत उपहार भी एकत्र किए गये। गुरु वशिष्ठ की पालकी, दशरथ के रथ बड़ी सुरुचि से सजे थे। शुभ मुहूर्त में भरत

की अगुवाई में अयोध्या से राम की बारात मिथिला की ओर चल निकली। भरत और शत्रुघ्न अपने मित्रों की टोली के साथ श्यामकर्ण घोड़ों पर सवार थे। चार दिन में अयोध्या दल मिथिला की सीमा के निकट पहुँच गया। सीमा पर शतानन्द और जनक के छोटे भाई, संकाय के राजा कुशध्वज दलबल के साथ अगवानी के लिए उपस्थित थे। कन्या–पक्ष के लोग बारात को अपने अनुरक्षण और मार्गदर्शन में मिथिला तक ले गए। जनक ने वरपक्ष के राज भवन में ही ठहरने की व्यवस्था करी थी। फिर भी दशरथ ने विश्वामित्र के डेरे पर ही रहना उचित समझा।

संध्या को जनक सपरिवार दशरथ से मिलने पहुँचे। दशरथ के साथ उनकी पत्नी सुनयना और उनकी छोटी पुत्री उर्मिला थीं। कुशध्वज के साथ उनकी पत्नी सुलक्षणा तथा मांडवी और श्रुतिकीर्ति दोनों पुत्रियाँ थी। जनक ने अपने परिवार का परिचय कराया।

दशरथ ने राजा सीरध्वज व उनके परिवार का स्वागत करके अपने दोनों पुत्र भरत और शत्रुघ्न का परिचय कराया। विदेहराज का परिवार दशरथ के बाएँ ओर बैठी श्याम–गौर भरत–शत्रुघ्न की जोड़ी और दाहिनी ओर वैसी ही श्याम–गौर राम–लक्ष्मण को देख चकित रह गये। दोनों युगल में कितनी साम्यता!

किन्तु थोड़ी देर में ही दोनों जोड़ियों में हल्की सी असमानता भी परिलक्षित होने लगी। भरत और शत्रुघ्न राजकुमार लग रहे थे वहीं राम–लक्ष्मण युद्ध में तपे हुए धीर क्षत्रिय कुमार प्रतीत हो रहे थे।

औपचारिकता समाप्त होने पर जनक ने विदा लेते हुए अगले दिन दशरथ को अपनी यज्ञशाला का निरीक्षण करने हेतु निमंत्रित किया। दशरथ ने इसे तत्काल ही स्वीकार कर लिया। दशरथ स्वयं भी वह यज्ञशाला देखना चाहते थे जहाँ उनके पुत्र राम ने इतिहास रचकर परशुराम ऐसे धुरंधर ऋषि से आशीष व दिव्य धनुष प्राप्त किया।

पुत्र के सुकर्मों से कौन पिता आह्लादित नहीं होता?

----------x------x------x----------

चारों भाइयों में केवल राम का विवाह!

यह तथ्य विश्वामित्र को असहज कर रहा था। विश्वामित्र ने मन में तर्क किया कि यदि चारों भाई पत्नियों के माध्यम से एक में बँध जाएं तो पारिवारिक विग्रह की संभावनायें काफी कम हो सकती है। अपने इस प्रस्ताव पर वशिष्ठ से मंत्रणा करने के उपरांत, रात्रि विश्राम से पहले वशिष्ठ और विश्वामित्र ने दशरथ को मंत्रणा हेतु आमंत्रित किया। दशरथ तत्काल ही उपस्थित हुए। विश्वामित्र ने राम की सफलता के राजनैतिक प्रभाव व मिथिला और अयोध्या के सम्बन्धों का महत्त्व दशरथ को बताया। फिर सीता का रूपसी होने के साथ विदुषी और सैन्य कर्म में दक्ष होना भी बताया। इस औपचारिकता के बाद विश्वामित्र गंभीरता से बोले, "राजन्, राम का विवाह तो जैसे विधना ने पूर्व निश्चित कर रखा था। राम के विवाह के उपरांत तुम्हें अब ज्येष्ठता के क्रम से बाकी तीनों राजकुमारों का विवाह करना होगा।"

फिर कुछ रुक कर वशिष्ठ की ओर देखते हुए कहा, "दशरथ, तुम्हारे चारो पुत्र होनहार और पराक्रमी हैं। मन, क्रम, वचन से वह सब भाई एक दूसरे के प्रति स्नेह–समर्पित होने के साथ ही तुम्हारे अनुगामी भी हैं। ईश्वर से प्रार्थना है कि उन भाइयों में यह सद्बुद्धि बनी रहे। चारों भाइयों के अलग–अलग राज्यों की कन्यायों से विवाह होने पर अयोध्या को राजनैतिक बल अवश्य प्राप्त होगा। वहीं रघुकुल में अलग–अलग संस्कारों वाली वधुओं के आगमन से रनिवास में मत–भिन्नता की स्थिति भी बन सकती है। इस मत–भिन्नता से चारो भाइयों के विचारों में भी अंतर पड़ सकने की संभावना को एकदम नकारा नहीं जा सकता है।"

"मेरा मन्तव्य समझ रहे हो न, राजन्?" असहज वार्तालाप को सूक्ष्म करते हुए विश्वामित्र ने दशरथ का मन टटोला।

"ऋषिवर, कौन पिता होगा जो ऐसी परिस्थिति से बचना नहीं चाहेगा?" दशरथ के प्रश्न में ही उनका उत्तर समाहित था।

"इस परिस्थिति से निपटने के लिए ही गुरु वशिष्ठ और मेरा प्रस्ताव है– यदि तुम अपने तीनों कुमारों का विवाह भी यदि मिथिला

की बाकी तीनों राज–कन्याओं से कर दो तो एक ही परिवार में एक ही साथ पली बढ़ी बहनों में मेल जोल बना रहेगा। अयोध्या के अंतःपुर में मत–भिन्नता की संभावना भी समाप्त हो सकती है।" कह कर विश्वामित्र मौन होकर दशरथ के चेहरे के भाव पढ़ने लगे।

दशरथ ने आत्मलाप किया "जनक की पुत्री उर्मिला और कुशध्वज की पुत्रियाँ मांडवी और...श्रुतिकीर्ति भी संस्कारी एवं सुंदर हैं" फिर वशिष्ठ और विश्वामित्र को नमन करते हुए बोले, "आप गुरुजनों से अधिक रघुकुल का हितैषी कौन है? आप की आज्ञापालन में ही मैं अपना और अयोध्या का कल्याण मानता हूँ। किन्तु क्या जनक भी इसे स्वीकार करेंगे?"

"चारों भाइयों को देखने के बाद कुशध्वज की प्रतिक्रिया भाँप कर ही मैंने ब्रह्मर्षि से इस सम्भावना पर विचार किया था। जहाँ तक जनक के स्वयं की बात है वह तो राम–लक्ष्मण पर मोहित हैं। वह उर्मिला का हाथ लक्ष्मण को देने में अपने को भाग्यशाली मानेंगे। मैंने पहले ही शतानन्द को इस प्रस्ताव का आभास करा दिया है। वह भी इस सुयोग से प्रसन्न हैं। भला होगा यदि कल यज्ञशाला में दोनों पक्ष इस प्रस्ताव को अंगीकार कर लें।" विश्वामित्र ने शांत भाव से कहा।

अगले दिन दशरथ यज्ञशाला पहुँचे तब जनक उनकी प्रतीक्षा ही कर रह थे। फिर भी दशरथ ने द्वार से ही प्रवेश की अनुमति चाही। उत्तर में जनक स्वयं बाहर आए और कहा, "राजन्, आप श्रेष्ठ है, अतिथि हैं। आपको अनुमति की क्या आवश्यकता?"

"सत्य है विदेहराज, किन्तु इस समय मैं याचक हूँ; याचक से दाता सदैव श्रेष्ठ है।"'

तभी मिथिला के कुलगुरु शतानन्द के साथ विश्वामित्र ने प्रवेश किया।

विश्वामित्र ने जनक व कुशध्वज से कहा, "राजन्! मैं कौशिक, विश्वामित्र, सीता के साथ ही, इक्ष्वाकु कुल हेतु राजा दशरथ की ओर से लक्ष्मण हेतु आपकी पुत्री उर्मिला, तथा भरत और शत्रुघ्न के लिए क्रमशः सीरध्वजा मांडवी और श्रुतिकीर्ति का हाथ माँगता हूँ।"

"नेमि वंश इससे कृतकृत्य होगा", जनक ने कहा वहीं कुशध्वज ने प्रसन्नता से सभी को प्रणाम किया।

निश्चित मुहूर्त में राम का विवाह सीता से, लक्ष्मण का विवाह जनक की छोटी बेटी उर्मिला से सम्पन्न हुआ। वहीं भरत और शत्रुघ्न का विवाह कुशध्वज की कन्या मांडवी और श्रुतिकीर्ति से सम्पन्न हुआ।

मिथिला नरेश और मिथिलवासियों के लिए यह चौगुने हर्ष का मौका था। जगह जगह नागरिकों ने उत्सव के आयोजन किये। प्रजाजन और गुरुकुलों को दशरथ और जनक दोनों मुक्त–हस्त से दान देकर सभी से वर–वधुओं के सुखी जीवन का आशीष पाकर प्रसन्न थे।

शुभ मुहूर्त में बारात वापस अयोध्या लौटी। मिथिला ने अपनी पुत्रियों हेतु पर्याप्त धन–धान्य व अयोध्या की प्रजा हेतु पर्याप्त उपहार भेजे। सीता, मांडवी, उर्मिला और श्रुतिकीर्ति की सुविधा के लिए हर कन्या के साथ कुछ सेवक सेविकायें भी अयोध्या आईं।

"और गुरुदेव उर्मिला की सुविधा के लिए मैं गौरी और वर्तमान में मेरे पति आर्य कौस्तुभ भी सेवक–सेविकाओं के रूप में मिथिला से अयोध्या आए। तब से अब तक हम दोनों अयोध्या में ही निवसित हैं" कहकर गौरी चुप होकर विश्वामित्र की ओर देखने लगी।

विश्वामित्र ने एक गहरी साँस लेकर कथा का सूत्र अपने हाथ में लेते हुए बोले, "गौरी तुमने बहुत संक्षेप में, किन्तु कुशलता के साथ मिथिला की घटनाओं का वर्णन किया।"

----------x------x------x------------

"मिथिला से अयोध्या को लौटते सभी बाराती उत्सव मनाते वापस लौट रहे थे। ठीक भी था। राम और लक्ष्मण की उपलब्धियाँ, एक ही साथ चारों कुमारों का विवाह! इससे अधिक उत्सव मनाने का अवसर; अयोध्यावासियों का उत्साह सातवें आसमान पर था। किन्तु राजा दशरथ और मैं दूसरे विचारों में डूबे थे।

अभी तक केवल राम के विवाह से उत्पन्न कैकेयी के असंतोष का शमन नहीं हो सका था। वहीं अब चारो कुमारों का विवाह! कैकेयी कि सम्मति और सहमति के बगैर? राजा दशरथ को यह विचार उद्विग्न कर रहा था कि वह अयोध्या पहुँच कर कैकेयी का सामना कैसे करेंगे?

वहीं विश्वामित्र की दृष्टि भविष्य पर थी। संभावना थी कि राम की उपलब्धियों पर प्रसन्न होकर, अयोध्या पहुँचते ही राजा दशरथ राम को युवराज घोषित कर दें। उस समय राजमहल में क्या परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं; यह कैकेयी की प्रतिक्रिया पर निर्भर करेगा। दशरथ, कैकेयी और भरत के सामूहिक विरोध से कैसे निपटेंगे? भरत क्या अपनी माँ का पक्ष लेकर विद्रोह करेगा अथवा माँ का पक्ष छोड़ पिता के निर्णय का साथ देगा?

परंतु विश्वामित्र के लिए सर्वोपरि प्रश्न था कि इन परिस्थितियों में स्वयं राम की क्या प्रतिक्रिया होगी। क्या वह सत्ता के संघर्ष में उलझ कर लोक–रंजन की अपनी प्रतिज्ञा विस्मृत कर देगा...?

विश्वामित्र का अन्तःकरण इस संभावना को मानने को तैयार नहीं हो रहा था। फिर भी, यदि ऐसा हुआ तो विश्वामित्र को फिर से एक सूर्य की खोज करनी पड़ेगी!

----------x------x------x------------

दशरथ कैकेयी का सामना होने के मुहूर्त को जितना अधिक टल सकता हो, टालना चाहते थे। इसलिए वह चाह रहे थे कि अयोध्या पहुँचने में जितना विलंब हो, श्रेयस्कर है। फिर भी लाख मनाने के बाद भी मिथिला से अयोध्या की यात्रा में चार दिन से अधिक समय नहीं लगा। अयोध्या के मुख्य द्वार पर ही प्रजा अपने राजा, राजकुमार और उनकी वधुओं के स्वागत हेतु उमड़ पड़ा था। मंगल–कलश, मंगल–वाद्य और कुमकुम–अक्षत, रोली की वर्षा व जय–जयकार के साथ राजा की सवारी मुख्य राज्य महल के सम्मुख पहुँची। दशरथ को प्रसन्नता हुई कि कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी को अपनी सेविकाओं के साथ मंगलथाल लिए नव–वधुओं के स्वागत में परछन के लिए उपस्थित थीं।

"ठीक ही है", दशरथ ने सोचा, राजमहल कि बात को राजमहल की दीवारों के अंदर ही रहना चाहिए।

यह नियति ही जानती थी कि राज परिवार में उबल रहा गरल शीघ्र ही विस्फोट के रूप में बाहर आकर अयोध्या और भरतखंड के इतिहास में अंकित होने वाला है।

----------x------x------x------------

श्यामवर्णा कौशल्या और कैकेयी के बीच खड़ी गौरांगी सुमित्रा तमाल वृक्षों के बीच निकलते चन्द्रमा सी शोभित हो रही थी। राजा भी यह दृश्य देख कर प्रसन्न हो ही रहे थे कि उनके मन को एक झटका से लगा। कैकेयी हमेशा की तरह अपनी वरिष्ठता का ध्यान रखते हुए सुमित्रा से पहले स्थान पर रहती थी। परंतु आज...कैकेयी ने अपने और कौशल्या के बीच सुमित्रा को स्थान देकर कौशल्या से बढ़ती हुई दूरी का एहसास दिला रही थी।

"तो क्या, मँझली रानी के मन में रोष के अलावा कोई कूट भावना पल रही है।", राजा की राजनैतिक बोध तंत्रिकाएं सजग हो उठीं; उनकी बाईं आँख भी तीव्रता से फड़कने लगी। शकुन–अपशकुन पर अविश्वासी राजा का मन भविष्य के प्रति चिंतित हो उठा। उन्होंने फड़कती आँख पर हाथ रख उसे शांत करना चाहा। परंतु आँख फड़कती रही।

चारो भाई आशीर्वाद हेतु माताओं के सम्मुख सपत्नीक अपनी वय अनुसार खड़े थे। सबसे पहले कौशल्या ने सभी का आचमन कर आरती उतारी। पहले राम–सीता को तिलक लगाया, फिर क्रमशः भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न को तिलक कर गले लगाया। कैकेयी पहले स्वागत करे यह सोच सुमित्रा कुछ देर खड़ी रही, फिर उसे अचल देख उसने भी बड़े से छोटे के क्रम में सबको आशीर्वाद दिया।

सबसे बाद कैकेयी तिलक करने को उद्यत हुई। पर यह क्या... उसने छोटे शत्रुघ्न से तिलक शुरू किया!

विश्वामित्र कैकेयी के इस बदले हुए क्रम को देख चकित हुए।

शत्रुघ्न का प्रथम तिलक? उन पर कैकेयी का कोई विशेष स्नेह नहीं था। यह उन्हें ज्ञात था। फिर उन्हें समझ आया कि राम और सीता को सबसे अंत में आशीष देने के पीछे कैकेयी का राम से अपनी दूरी होने का एक संकेत कर रही थी।

कूटनीति की भाषा इतनी कूट होती है! लक्ष्मण की मुद्रा कठोर हो गई।

सासें वर–वधुओं को लेकर कौशल्या के भवन गईं। वहाँ चारों युगलों को आसन पर बैठा कर माताओं ने उनका पूजन किया। नयी बहुओं को यह अटपटा लगा। गुरु–पत्नी ने बहुओं को समझाया कि यह पूजन सीता या उर्मिला आदि कुलवधुओं का पूजन नहीं है। रघुकुल का वंश विस्तार अब तुम्हारे द्वारा होना है। अतः वंश–वृद्धि हेतु यह तुम लोगों के माध्यम से कुल–देवियों का पूजन है।

पारस्परिक परिचय के बाद सुमित्रा ने अनुभव किया कि कैकेयी कुल–देवी पूजन के बाद ही उठकर चली गई थी। किन्तु वह चुप रही।

कौशल्या भवन में ही चारों वधुओं के रात्रि विश्राम का प्रबंध था।

मन्थरा

कैकेयी को नींद नहीं आ रही थी, फिर भी वह सोने का प्रयास कर रही थी कि दरवाजे पर परिचित सी थाप सुनाई पड़ी। इतनी रात को कौन? कैकेयी ने अपने पलंग पर बैठे–बैठे ही आगंतुक को अंदर आने को कहा। द्वार खोल कर अंदर आया आगंतुक कैकेयी की प्रधान सेविका मन्थरा थी। गौर वर्ण की श्वेतकेशी मन्थरा लाल वस्त्रों में बहुत प्रभावशाली लग रही थी। वह काफी वृद्ध हो चली थी, किन्तु अब भी उसे देख कर अनुमान लगाया जा सकता था कि वह अपने समय में अप्रतिम सुंदरी रही होगी। बढ़ती आयु के कारण उसकी पीठ झुक चुकी थी। इसी कारण से कैकेयी कभी परिहास में उसे 'कुब्जा' कह कर पुकारती थी, जिसका वह कदाचित बुरा नहीं मानती। किन्तु किसी

अन्य का उसे कुब्जा कहकर पुकारने का साहस नहीं था। मगर राजमहल में उसके पीठ पीछे अन्य सेविकाएं उसे कुब्जा कहकर ही संबोधित करती थीं।

मन्थरा कैकय प्रदेश की थी और कैकेयी के दशरथ से विवाह के बाद वह कैकेयी की अन्य सेविकाओं की प्रधान के रूप में साथ आई थी। कैकेयी की धाय होने के कारण कैकेयी का मातृवत् स्नेह मन्थरा पर था। एक तरह से वृद्ध राजा से विवाह के बाद कैकय नरेश ने मन्थरा को कैकेयी की अभिभावक के रूप में भेजा था। कैकेयी के व्यवहार और कूटनीति में मन्थरा उसकी पथ–प्रदर्शक थी।

अयोध्या आने के बाद से ही मन्थरा का एक मात्र ध्येय था कि जिस प्रकार भी हो, कैकेयी का जाया पुत्र ही अयोध्या के सिंहासन पर आसीन हो। किन्तु जब कैकेयी की भी कोख फलीभूत नहीं हुई, तब केवल मन्थरा की मंत्रणा के प्रभाव से ही दो अन्य सपत्नियों के रहते हुए भी कैकेयी दशरथ की मुख्य पत्नी की श्रेणी में आ सकी।

उसने कैकेयी को प्रेरित किया वह हर प्रयाण में राजा के साथ उनके रथ पर उपस्थित रहे। देवासुर संग्राम में भी कैकेयी राजा के साथ रहती। एक बार तो अपनी वीरता और तात्कालिक बुद्धि से कैकेयी युद्धभूमि में घायल दशरथ को सकुशल वापस लाने में सफल रही।

प्राणरक्षा के बदले कुछ भी माँगने को मिले दो वचनों को कैकेयी ने मन्थरा की सलाह से ही थाती के रूप में सहेज कर रखा था। इतिहास साक्षी है कि मिले वचनों का कितना भयानक कूटनीतिक उपयोग हुआ।

मन्थरा ने ही कैकय देश से आई सेविकाओं के माध्यम से राजमहल में एक सुदृढ़ तंत्र स्थापित कर लिया था। यह सेविकाएं पल–पल की छोटी बड़ी घटनाओं को मन्थरा के माध्यम से कैकेयी तक पहुँचती रहतीं।

धाय होने के कारण कैकेयी मन्थरा को मातृवत् सम्मान देती

थी। परंतु अब उसके कूट–तंत्र की प्रधान होने के कारण मन्थरा कैकेयी के लिए अपरिहार्य बन गयी थी। वह साधिकार कैकेयी की बातों व कुछ विशेष कृत्यों का खुलकर विरोध करने में सक्षम थी। इन सारे अधिकारों के होते हुए भी चतुर मन्थरा अपनी सीमा नहीं लांघती थी। उसके संज्ञान में था राजमहलों की निकटता कभी भी भयंकर परिणाम दायिनी हो सकती है।

"कैकेयी, धनुष–भंग कर लौटे राम के व्यक्तित्व में तुम्हें कुछ परिवर्तन परिलक्षित हुए?" मन्थरा का एक–एक शब्द किसी तीखे बाण की भाँति बेधने वाले थे।

"हाँ, राम और लक्ष्मण दोनों का व्यक्तित्व काफी निखर गया है। वह दोनों आत्मविश्वास से परिपूर्ण दिखते हैं", कैकेयी मन्थरा के प्रश्न का अभिप्राय समझने का प्रयास करती हुई बोली।

"तुम मात्र राजा को मान दिखाने में ही सक्षम हो। तुमने ध्यान ही नहीं दिया कि विश्वामित्र के साथ जाने वाले राम और धनुष–भंग कर वापस आने वाले राम में कितना अंतर आ गया। उसकी काया अब कितनी विशाल लगती है। सिंह की भाँति उसकी ठवन कितनी निश्चिंत एवं प्रभावशाली है।"

"यह लगभग निश्चित है कि राजा अब केवल राम को ही युवराज का पद देंगे। इसके बाद भरत, तुम्हारी और मेरी क्या दशा होगी। विश्व के सबसे दुर्द्धर्ष योद्धा परशुराम को पराभूत करने के वाले राम के सामने, हमारा प्रिय भरत क्या घड़ी भर भी टिक सकेगा?" कहकर मन्थरा भावावेश से हाँफने लगी।

'भरत क्या घड़ी भर भी टिक सकेगा' मन्थरा के इन शब्दों ने कैकेयी के हृदय पर वज्राघात सा किया। वह पुत्र के अनिष्ट की आशंका से छटपटा कर बोली, "नहीं ऐसा नहीं हो सकता।"

"इसका एक ही उपाय है। तुम भरत को राम से दूर रखो। चाहो तो उसे अपने भाई युधाजित के साथ कैकय देश भेज दो। जबतक हम भरत के अभिषेक निश्चित करने में सफल नहीं होते तबतक भरत का अयोध्या से दूर ही रहना उसके हित में है।"

कैकेयी कुछ कहती इसके पहले ही द्वार पर एक बार फिर थाप पड़ी, "माँ, सो तो नहीं गईं आप।" राम का विनीत स्वर गूँजा।

"लो तुम्हारे गले में सदैव लिपटे रहने वाला विषधर फुफकार रहा है, संभालो", कह कर मन्थरा ओट में हो गई।

द्वार से राम ने अपनी नवपरिणीता वधू के साथ प्रवेश किया। कैकेयी ने राम को ध्यान से देखा। उसे मन्थरा का कहना सत्य लगा। वह आतंकित हो उठी। किन्तु ऊपर से वह प्रसन्न मुद्रा ओढ़ कर बोली, "अरे, इतना कुछ पाने के बाद भी राम अपनी माँ को नहीं भूला। इतनी रात्रि में भी वह मुझे मनाने आया!" फिर उठने की चेष्टा करते हुए कहने लगी, "मुझे बचपन के वह दिन याद आ रहे हैं, जब मैं झूठ–मूठ राम से रूठने का अभिनय करती थी। तब राम, तू कैसे व्याकुल हो उठता था? फिर तू बाल सुलभ भंगिमाओं से मुझे मनाता और प्रसन्न करने की चेष्टा करता। इतना बड़ा होने के बाद भी राम बदला नहीं।" कैकेयी ने विभोर होने का नाटक किया।

माँ बेटे का स्नेहिल वार्तालाप सुनकर सीता ने मुस्कराते हुए प्रणाम किया। पलंग के पैताने बैठ कर कैकेयी के चरण सहलाने लगी; वहीं राम ने प्रणाम कर बड़ी विनम्रता से पूछा "राम से कोई अपराध हो गया है माँ? अपने राम से माँ अप्रसन्न कैसे हो गईं?"

कैकेयी ने कहा, "यह क्रोध नहीं है वत्स, माँ का मान है।" कहते हुए कैकेयी राम का हाथ पकड़ कर उठ बैठी।

राम का हाथ थामे ही बोली, "कितनी साध थी कि राम की पत्नी का चुनाव उसकी अपनी माँ कैकेयी करेगी। अपने हाथों से तुझे दूल्हा बना कर भेजूँगी। पर तू... पता नहीं कहाँ–कहाँ भटकता रहा और जब लौटा तो अपनी पत्नी के साथ। तुम ही बताओ माँ के मन को ठेस पहुँचेगी कि नहीं?"

"क्षमा करें, मैं आप का अपराधी हूँ। किन्तु माँ परिस्थितियाँ कुछ ऐसी बनती गईं" राम ने विनम्रता से कहा।

"मैं जानती हूँ। पर अब तुमने यहाँ आकर मेरा मान रखा। मैं

तुम पर प्रसन्न हूँ", फिर सीता को अपने पास बुलाते उसके चेहरे को देखते हुए "सीता ऐसी सुंदर और गुणवती बहू देखकर कर पहले ही मेरा रोष जाता रहा। सम्भवतः मैं भी इससे अच्छी बहू नहीं खोज सकती। इसमें भी तेरी जैसी विनम्रता है" कहकर कैकेयी ने अपने गले का हार उतार कर सीता को पहना दिया। सीता ने प्रणाम किया।

सीता को अपना हार पहना कर जैसे ही कैकेयी की दृष्टि ऊपर उठी उसे राम के पीछे खड़ी मन्थरा दिखाई दी। मन्थरा की मुद्रा से लग रहा था कि बहुत ही क्षुब्ध है। उसकी आँखों में चिंगारी थीं। कूबड़ की विवशता के बाद भी वह आवेश से काफी कुछ तन कर क्रोध से कैकेयी को देख रही थी।

मन्थरा की मुद्रा कैकेयी को इंगित कर रही है कि उससे कहीं बड़ी भूल हो गई। अतः वह उठ कर खड़ी हो गई। राम और सीता दोनों कैकेयी को प्रणाम कर वापस चल दिये।

रास्ते में खड़ी मन्थरा को देखकर राम ने प्रणाम किया और सीता से मन्थरा का परिचय कराते हुए बोले, "यह हमारे ननिहाल कैकय देश कि निवासिनी देवी मन्थरा हैं। यह माता कैकेयी की धाय माँ भी हैं। इसलिए यह हम सबकी सम्माननीय हैं।"

सीता ने झुक कर मन्थरा को प्रणाम किया। मन्थरा ने भी ऊपरी मन से दोनों को अनेक आशीर्वाद दिये।

राम के जाने के बाद मन्थरा की आँखों में पुनः क्रोध छा गया बोली, "कैकेयी कभी–कभी मुझे तुम्हारी बुद्धि पर तरस आता है। पता नहीं क्यों राम के सामने तुम सम्मोहित सी हो जाती हो। तुम्हारा इतना प्रेम कभी अपने स्वयं के जाये पुत्र भरत के लिए नहीं उमड़ता?"

कैकेयी कुछ नहीं बोली। तुरंत उत्तर से बचने के लिए वह पात्र से एक घूँट पानी लेकर बोली, "क्या हुआ मन्थरा, आज तक मैंने तुम्हें इतने क्रोध में नहीं देखा?"

"यही तो दुर्भाग्य है! तुम क्षणिक भावावेश में क्या कर गईं इसका तुम्हें जरा भी भान नहीं" मन्थरा ने कपाल पर हाथ मारते हुए कहा।

"वह हार जो राजा ने तुम्हें विवाह के समय यह कहकर पहनाया था कि "कैकेयी के गले में पड़ा यह हार मुझे इसके पुत्र को उत्तराधिकारी बनाने का स्मरण कराता रहेगा"। वही हार तुमने सीता के गले में डाल दिया। सीता के गले में इस हार को देखकर राजा अनुमान लगा सकते हैं कि तुमने राम के सद्‌गुणों से प्रभावित होकर, भरत का अधिकार छोड़ दिया। राम के प्रति तुम्हारा प्रेम जगजाहिर है ही। राम के प्रति अनुराग के चलते वह हार सीता को देकर तुमने उसे मानो अयोध्या की भावी साम्राज्ञी मान लिया और अपने पुत्र भरत का अधिकार छोड़ दिया...?" रानी सन्न रह गई। उसे आघात लगा। वास्तव में वह बड़ी मूर्खता कर बैठी। उसने दीन होकर कहा "मन्थरा अब क्या करूँ?"

मन्थरा तेजी से आगे बढ़ी और कैकेयी के हाथ से जल–पात्र लेकर उससे कैकेयी के हाथ के पुराने घाव को खुरच दिया "याद करो उस दिन, उस युद्ध को, जिसमें तुमने दशरथ की प्राण रक्षा करी थी। याद करो उन दो वरदानों, को जिन्हें राजा ने प्राण रक्षा के बदले में तुम्हें देने का वचन दिया था।" मन्थरा एक–एक शब्द को चबा–चबा कर बोल रही थी। "इस घाव को खुरच कर मैंने इसे आज ताजा कर दिया है। अब यह घाव तुम्हें उस घटना और वरदान की याद दिलाता रहेगा" अपने आँचल के टुकड़े से कैकेयी के खुरचे हुए घाव पर पट्टी बाँधते हुए बोली, "इस घाव को तबतक मत भरने देना कैकेयी, जबतक भरत युवराज पद पर अभिषिक्त नहीं हो जाता"।

देवासुर संग्राम में कैकेयी राजा दशरथ के साथ उनके रथ पर रणभूमि जाती थी। उसका कहना था कि आपत्ति के समय वह राजा की ढाल बन जायेगी। राजा ने इसे मात्र स्त्री सुलभ भावुकता माना।

एकबार रणभूमि से देवों की भागती हुई सेना को उत्साह दिलाने हेतु दशरथ शत्रु पक्ष में आगे बढ़ते गये। फिर भी भयाक्रांत देवसेना रुकी नहीं, वह भाग गई। दशरथ असुरों के बीच अकेले घिर गये। उनका सारथी मारा गया। तब कैकेयी ने घोड़ों की बागडोर

संभाली। राजा युद्ध करते रहे। कैकेयी बड़ी कुशलता से रथ संचालन करते हुए राजा को युद्ध–भूमि से सकुशल निकाल लाई।

फुर्तीले अश्वों के लिए विख्यात कैकय देश की कैकेयी अश्व संचालन में बचपन से दक्ष थी। किन्तु रथ के चार घोड़ों की बागडोर एक साथ खींचने में उसके दाहिनी हाथ की हथेली में घाव हो गया था। मन्थरा ने आज उस पुराने घाव को फिर से ताजा कर दिया था।

सुरक्षित स्थान पर पहुँचने के बाद दशरथ ने कैकेयी की घायल हथेली से खून बहता देखा। उसका दृढ़ निश्चय देख वह हत्प्रभ हो गये। उन्होंने स्वयं कैकेयी के हाथ पर पट्टी बाँधी। उसके बाद राजा ने घोड़ों की बागडोर अपने हाथ में ले ली और कैकेयी को रथ पर विश्राम करने को कहा। अपनी छावनी में पहुँच कर राजा कैकेयी को सहारा देकर रथ से उतारते हुए बोले, "कैकेयी, आज निश्चय ही तुमने मेरी प्राण–रक्षा की। इसके लिए दशरथ तुम्हारा आजीवन ऋणी रहेगा। तुम मुझसे अभी या जीवन में कभी भी दो मनोवांछित वरदान माँग सकती हो।"

कैकेयी उस समय अपने पति की प्राण–रक्षा हो जाने से ही प्रसन्न थी। वरदान की बात पर उसने कोई ध्यान नहीं दिया। परंतु जब मन्थरा को मनोवांछित वरदान पता चली वह बहुत प्रसन्न हुई। उसने कैकेयी से कहा कि इन वरदानों को थाती की भाँति सँजोकर रखो। समय आने पर यह ब्रह्मास्त्र सिद्ध होंगे।

आज मन्थरा कैकेयी को उन्हीं दो वरदानों का स्मरण करा रही थी।

कैकेयी को नींद नहीं आ रही थी। वह विचारमग्न थी कि आज की भूल का निवारण कैसे हो। तभी उसकी दृष्टि दीवार पर लगे एक चित्र पर पड़ी। एक बहेलिया अपनी बाँसुरी पर मधुर तान छेड़े था। संगीत के माधुर्य से कई हिरण उसके पास खिंचे आ रहे थे। बहेलिये के पास ही एक बड़ा सा जाल रखा था। स्पष्ट था कि मृगों के निकट आने पर बहेलिया बाँसुरी छोड़ जाल फेंक कर मृगों को बंदी बना लेगा। निचले भाग में चित्र का शीर्षक बड़े–बड़े अक्षरों में लिखा था 'लुब्धक'।

कैकेयी आज पहली बार बहेलिये का पर्यायवाची शब्द लुब्धक का अर्थ समझ पाई। बहेलिया पहले मधुर संगीत से मृगों को लुभाता है और फिर संगीत से मोहित मृगों को अनायास बंदी बना लेता है।

कैकेयी के चेहरे पर कुटिल मुस्कान फैल गई। उसे भी लुब्धक बनना पड़ेगा। यह निश्चय कर वह आराम से गहरी नींद में सो गई।

----------x------x------x----------

राजमहल में प्रातः से ही बहुत हलचल थी। वधु आगमन के बाद आज बहू–भोज था, जिसमें चारों बहुओं को परिवार के लिए कुछ मिष्ठान्न बनाना था। साधारणतया परिवारों में इस अवसर पर खीर ही बनने की प्रथा है।

कौशल्या के भवन की पाकशाला में इन चारों मैथिल कुमारियों ने मिलकर खीर पकाई। पाकशाला के बाहर दो आसनों पर गुरु वशिष्ठ एवं विश्वामित्र विराजमान हुए। उसके बाद राजा दशरथ, तीनों माताएँ और अंत में चारो भाई ज्येष्ठता के क्रम में बैठे।

इसके पहले कि बहुएँ बहू भोज के लिए आयें, वशिष्ठ ने दशरथ परिवार को संबोधित करके कहा, "राजन, ब्रह्मर्षि विश्वामित्र आज आपके परिवार से आचार–व्यवहार की चर्चा करेंगे।"

सभी उत्सुकता से विश्वामित्र कि ओर देखने लगे।

"हम सभी जानते हैं कि मिथिला में राम ने पौरुष सिद्ध करने के निमित्त ही शिव–धनुष उठाया था। किन्तु राम द्वारा धनुष भंग के बाद ही हम लोगों को भान हुआ कि धनुष–भंग के साथ सीता राम की पत्नी हो गई। इक्ष्वाकु कुल को सीता से अधिक योग्य कोई अन्य कन्या मिल सकती है, कम से कम मुझे तो इसमे पूर्ण संदेह है। यही मत स्वयं राजा दशरथ का भी है। उसके बाद तीनों भाइयों का विवाह भी नेमि कुल की ही कन्याओं से निश्चित होना और भी मंगलकारी था। हम सभी इस सम्बन्ध से प्रसन्न भी हैं।" फिर कुछ हिचकते हुए विश्वामित्र बोले, "इस कल्याणकारी कृत्य में एक ही विधान आड़े आ रहा है और

वह है राजकुमारों की आयु। सभी राजकुमारों के गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने के कुछ समय शेष है।" सभी ने ऋषि से सहमत होते हुए सिर हिलाया।

कौशल्या ने हाथ जोड़ कर आतुरता से पूछा, "इसका उपाय भी बताने की कृपा करें ऋषिवर !"

"कुछ विशेष नहीं। जब तक इनके ब्रह्मचर्याश्रम की अवधि पूरी नहीं होती, यह चारों युगल ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करें। कुछ समय उपरांत अवधि पूर्ण होने के बाद ही यह सब आनंद से गृहस्थ जीवन में प्रवेश करें। वैसे इसमें इतनी विकट बाध्यता भी नहीं है। यदि माता पिता की आज्ञा हो तो यह युगल अब भी गृहस्थ जीवन प्रारम्भ कर सकते हैं।"

कौशल्या ने सबकी ओर से कहा कि ऋषि की आज्ञा का अक्षरक्षः पालन होगा। अभी तक जो भी शुभ हुआ, वह ऋषि विश्वामित्र की कृपा से ही हुआ। उनके इस मंतव्य में भी कल्याण ही होगा।

लुब्धक

तभी बहुओं के बहू–भोज के लिए प्रस्तुत होने की सूचना मिली।

बहू–भोज पर बहुओं को उपहार देने के लिए हर रानी के पास रेशमी लाल वस्त्र से ढके चार स्वर्ण थाल थे।

सबसे पहले कनिष्ठतम श्रुतिकीर्ति आई। उसने गुरुओं को सबसे पहले प्रणाम कर खीर प्रस्तुत की और आशीष पाया, फिर दशरथ से आशीर्वाद पाया। सभी रानियों ने उसे उपहार में पार्श्व में रखे थालों में से एक–एक थाल दिया। इसके बाद उर्मिला फिर मांडवी ने भी खीर अर्पित कर आशीष पाया। अंत में जब सीता आईं तो कैकेयी के पास उपहार का थाल नहीं बचा। उसके हाथ खाली थे। दशरथ, कैकेयी को खाली हाथ देख कर व्यग्र हो उठे। क्या कैकेयी सीता को खाली हाथ ही वापस करेगी...? उस दिन द्वार पर परछन करते समय भी कैकेयी ने राम का तिरस्कार किया था। यदि इस बार सीता का तिरस्कार हुआ

तो, यह अत्यंत अशोभनीय होगा। हो सकता है परिवार में दरार पड़ जाये।

सबसे आशीष पाने के बाद सीता ने कैकेयी पास पहुँच कर कैकेयी को प्रणाम कर खीर का पात्र रखा। थोड़ी देर वहीं रुकने के बाद सीता सुमित्रा की ओर जाने को हुई, तो कैकेयी ने सीता का हाथ पकड़ कर कहा, "मुझसे उपहार नहीं लोगी सीता?"

सीता सिर झुकाये खड़ी रही। कुछ भी नहीं बोली। कैकेयी ने सीता से कहा, "सीता, मैं तुम्हें स्वयं अपने लिए बनवाया घर 'कनक भवन' उपहार में देती हूँ।"

कनक भवन! सब की आँखें विस्फरित हो गईं। कनक भवन किसी भी स्वर्ण थाल से अधिक मूल्यवान था और पूरे कोशल राज में इसकी टक्कर का कोई भवन नहीं था।

कनक भवन सीता को उपहार में! दशरथ प्रसन्न हो उठे। कल सीता के गले में कैकेयी का हार और अब कनक भवन। प्रतीत होता है कि कैकेयी ने भी राम को अयोध्या का उत्तराधिकारी स्वीकार कर लिया। यही नहीं अपना स्वयं का हार पहना कर कैकेयी ने सीता को भावी साम्राज्ञी मान लिया।

लुब्धक की बाँसुरी पर मृग लुब्ध था!

अपने सदाशय से मोहित करने के बाद कैकेयी ने मन्थरा का सिखाया दूसरा दाँव फेंका– अगले दिन दरबार में प्रहरी ने कैकय कुमार युधाजित के आगमन की सूचना दी।

कैकेयी के भाई युधाजित आकर बोले, "महराज, कैकय छोड़े हुए काफी समय हो गया। मेरे पिता की वय भी हो चुकी; मुझे चलने की आज्ञा दीजिये।"

दशरथ ने आपत्ति की। "अरे कुमार, बेटों के विवाह में उलझे रहने की वजह से मैं आपको समय नहीं दे सका। कुछ दिन और रुकें।"

"नहीं राजन, अब आज्ञा दीजिये। वैसे भी बहन के यहाँ ज्यादा रहना उचित भी नहीं है।" फिर कुछ हिचकिचाते हुए कहा, "कल ही कैकय से एक संदेशवाहक आया है। मेरे अस्वस्थ वृद्ध पिता समय रहते अपने नाती और नाती–बहू को देखना चाहते हैं। यदि आपकी अनुमति हो तो मैं भरत–शत्रुघ्न को उनकी पत्नियों के साथ पिताजी के दर्शन हेतु लेता जाऊँ।" उसके स्वर में आग्रह था। भरत के ननिहाल में भी शत्रुघ्न को भरत से अलग नहीं माना जाता था।

दशरथ को लगा जैसे उनकी आकांक्षाओं में दैव उनकी सहायता कर रहा है। हर घटना उनके हिसाब से ही घट रही हैं। ऐसे में भरत की अनुपस्थिति भी उचित ही होगी।

"ठीक है, यदि श्वसुर जी का आदेश है तो आप भरत–शत्रुघ्न को अवश्य ले जाएँ। किन्तु उनको शीघ्र ही वापस भेजने का ध्यान रखिएगा। मांडवी और श्रुतिकीर्ति तो अभी तक परिवार से भली–भाँति परिचित भी नहीं हो सकी होंगी।"

भरत–शत्रुघ्न के विदा होने के बाद दशरथ और कैकेयी दोनों एक ही छत के नीचे रह कर पाँसे के कुशल खिलाड़ियों की भाँति आगे की चाल निर्धारित करने में व्यस्त थे। राजा समझते थे कि उनके मन की बात से कैकेयी अनभिज्ञ है। वहीं मन्थरा से निर्देशित कैकेयी दशरथ के भाव जानते हुए भी अपने भाव गुप्त रखने में सफल थी। पाँसे के खेल में विरोधी खिलाड़ी की चालों का अग्रज्ञान विजय के लिए निर्णायक सिद्ध होता है।

----------x------x------x------------

लक्ष्मण को सूचना मिली कि सिद्धाश्रम से वीरकेतु का गुरु विश्वामित्र के पास आना हुआ है। इस सूचना से लक्ष्मण के मन में प्रसन्नता और चिंता, दोनों प्रकार की भावनाओं का उदय हुआ। सिद्धाश्रम में रहकर वीरकेतु और लक्ष्मण की गाढ़ी मैत्री हो गई थी। सो, मित्र से मिलने की प्रसन्नता थी। वहीं चिंता इस बात की थी कि कहीं एकाएक लुप्त हुआ मारीच पुनः लौट कर तो नहीं आ गया?

अतः वीरकेतु से मिलने के निमित्त लक्ष्मण विश्वामित्र की कुटिया की ओर निकल पड़े।

वीरकेतु लक्ष्मण को देखकर अभिभूत हो गए। ग्रामवासियों और आश्रम की सुरक्षा में साथ–साथ जागते हुए बिताई रातें व आततायियों के विरुद्ध अभियान ने उन दोनों को काफी निकट ला दिया था। साधारण औपचारिकताओं के उपरांत दोनो गुरु की सेवा में उपस्थित हुए। वीरकेतु ने विश्वामित्र को बताया कि सिद्धाश्रम में अभी तक तो सभी कुछ सामान्य चल रहा है। मारीच की भी कोई सूचना न होने से अब यह माना जा रहा है कि वह अपने स्वामी लंकेश के पास जा चुका है। क्षेत्र पूरी तरह से निरापद होने के कारण अब ग्राम्यवासियों का जीवन भी अब सामान्य हो चुका है। अनाचार से पीड़ित महिलाएं भी परिवार और समाज में उचित स्थान मिलने की वजह से अब त्रासदी भूल कर सामान्य जीवन व्यतीत करने लगी है।

"यह सब तो ठीक है वीरकेतु, परंतु सुरक्षा व्यवस्था और उसका अभ्यास निरंतर चलते रहना चाहिए। जहाँ तक मेरी सूचना है, मारीच अब वापस कभी नहीं लौटेगा। उसे छद्म वेश में विंध्य पर्वत के पार जाते देखा गया है। फिर भी सुरक्षा व्यवस्था और सुरक्षा अभ्यास में कमी नहीं आनी चाहिए। ढीली सुरक्षा स्वयमेव वंचकों और दस्युओं को आमंत्रण देती है। अतएव इसके लिए तुम्हें सदैव सतर्क रहना होगा।" विश्वामित्र ने सावधान किया।

"गुरुदेव ! वहाँ सब आपके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। उनका कहना है कि निशाचरों से मुक्ति दिलाने के बाद ऋषि हमें कृतज्ञता ज्ञापन का अवसर दिये बिना ही कुमारों के साथ प्रस्थान कर गए। वह सब आप की तीव्र उत्कंठा से प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

विश्वामित्र ने कुछ सोचते हुए बरजा, "नहीं। निकट भविष्य में मेरा सिद्धाश्रम पहुँचना सम्भव नहीं है। मुझे अभी दक्षिणावर्त में महर्षि अगस्त्य से मिलकर वर्तमान परिस्थितियों और घटनाओं के बारे में उन्हें सूचित करना व भविष्य के बारे में विमर्श करना शेष है। उसके बाद ही मेरा सिद्धाश्रम आना सम्भव होगा।"

दक्षिणावर्त में महर्षि अगस्त्य से विमर्श...! क्या अगस्त्य मुनि के आह्वान के प्रतिउत्तर का समय आ गया? लक्ष्मण के मन में यह विचार एकाएक उठा। वह कुछ बोलने वाले ही थे कि विश्वामित्र बोल उठे, "वीरकेतु, तुम इतनी दूर से आ रहे हो। थोड़ा विश्राम करो। संध्या के समय हम फिर वार्ता करेंगे।"

वीरकेतु को लगा कि ऋषि आगे की चर्चा लक्ष्मण की उपस्थिति में नहीं करना चाहते थे; मगर वास्तविकता इससे उलट थी। वह अयोध्या राज्य के आंतरिक मसले व भविष्य की योजनाओं को अभी गुप्त ही रखना चाहते थे। अतः उन्होंने वीरकेतु को विश्राम करने की आज्ञा दी। वीरकेतु के जाते ही ऋषि बोले, "लक्ष्मण, तुम्हारा अनुमान एकदम सही है। दक्षिणावर्त का प्रसंग अब और अधिक नहीं टाला जा सकता है। संघर्ष का उपयुक्त समय निकट आ गया है।"

'कर्म हेतु अभियान' – इस संभावना से लक्ष्मण मन में उत्साह और स्फूर्ति से भर उठे। विश्वामित्र पुनः बोले, "सूचना है कि कैकेयी के महल में कूटनीतिक गतिविधियाँ अचानक सक्रिय हो उठी हैं। इन गतिविधियों की भनक न लगे इसी कारण से कैकेयी ने राम और सीता को कनक भवन में आवास देकर राजमहल से अलग कर कर दिया है। कैकेयी किन्हीं कारणों से भरत की सुरक्षा के बारे में चिंतित हो उठी है। यही कारण है कि उसने अपने मामा के साथ सुदूर कैकय प्रदेश भेज दिया। कैकेय प्रदेश में वह अपने पुत्र की सुरक्षा के बारे में निश्चिंत है...।"

"भाई भरत की सुरक्षा! मँझली माँ को क्या भ्राता राम की तरफ से भरत के अनिष्ट की आशंका है?" विश्वामित्र का वाक्य पूर्ण होने के पहले ही लक्ष्मण प्रश्न कर बैठे। इस समय उनके स्वर में अविश्वास और व्यग्रता झलकी पड़ रही थी।

"नहीं, राम की ओर से नहीं। भरत की सुरक्षा के लिए वह तुमसे चिंतित है लक्ष्मण। तुम्हारी ओर से" फिर लक्ष्मण को गूढ दृष्टि से देखते हुए विश्वामित्र आगे कहने लगे– "भरत की सुरक्षा हेतु कैकेयी तुमसे आतंकित रहती है।"

लक्ष्मण स्तब्ध रह गए। वह निश्चय नहीं कर सके कि इस सूचना पर कैसी प्रतिक्रिया दें; फिर एकाएक प्रकृतिस्थ होते हुए कहा, "गुरुदेव, राजमहल के आंतरिक कूट क्रियाकलाप जो हमारे संज्ञान में भी नहीं आते वह आपको इस निर्जन कुटिया में कैसे प्राप्त हो जाते है ?"

"कैकय प्रदेश से आयी सेविकाएं राजमहल में काफी प्रभावशाली हैं। स्वयं के विशिष्ट होने का तथ्य वह सेविकाएं केवल अपने तक ही सीमित रखें तो बातों का गुप्त रहना सम्भव है। परंतु प्रभावशाली होने के साथ ही मन में महत्त्वशाली दिखने की भी आकांक्षा जन्मती है। अहंमन्यता प्रदर्शित करने के उद्देश्य से यह सेविकाएं महलों की संवेदनशील सूचनाएँ बाहर बिखेरती रहती हैं। संवेदनशील सूचनाओं के खोजी इन्हें ही एकत्र कर लेते हैं। वैसे यह सूचनाएँ अब तक दशरथ तक भी पहुँच जानी चाहिए थीं, किन्तु राजा अब सम्भवतः इतने सुग्राही नहीं रह गए। अयोध्या को अब नए शासक की आवश्यकता है।"

"सीता को कनक भवन देकर कैकेयी ने राजा दशरथ को इस भ्रम में डाल दिया कि सभी की भाँति कैकेयी ने भी राम को उत्तराधिकारी स्वीकार कर लिया है" विश्वामित्र ने लक्ष्मण को कूटनीति समझाते हुए कहा, "इसके अतिरिक्त कनक भवन राजमहल से एकदम अलग होने के कारण राम को दशरथ के रनिवास में चल रहे सूक्ष्म षड्यंत्र का भान न हो सके। इस प्रकार बुद्धिमती रानी कैकेयी ने एक ही बाण से दो लक्ष्यों का संधान कर लिया। यही कारण है कि राम और सीता के प्रति कैकेयी की कूट सदाशयता से राजा दशरथ अब उसकी ओर से पूर्णतया आश्वस्त हैं। तुम भाइयों की ब्रह्मचर्य आश्रम की अवधि भी अब पूरी होने को है। संभावना है कि इन अनुकूल परिस्थितियों में वह राम को युवराज घोषित कर दें। वही समय होगा जब तुम्हारी मँझली माँ अपना पाँसा फेकेंगी। दशरथ तो वैसे ही कैकेयी के सम्मुख विवश हो जाते हैं।"

"मँझली माँ के मन में कुछ षड्यंत्र चल रहा है, गुरुदेव ?" लक्ष्मण प्रश्न करने वाले थे किन्तु विश्वामित्र आँखें बंद कर समाधिस्थ हो चुके थे। लक्ष्मण चिंतित मुद्रा में उठ कर चले आए।

आज का सूर्योदय इक्ष्वाकु कुल व सम्पूर्ण अयोध्या के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण था। राम आज अपनी आयु के पच्चीसवें वर्ष में प्रवेश कर रहे थे। आज से वह गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर सकते थे। पूरे कोशल राज्य के लिए यह उत्सव का दिवस था। राजा दशरथ के लिये भी यह चिर–प्रतीक्षित दिवस था। कैकेयी ने भी सारा कालकूट इसी दिन के लिये सँजो कर रखा था। वह दशरथ की चाल की प्रतीक्षा कर रही थी, मर्म स्थान ढूँढ़ रही थी। उसे रात भर नींद नहीं आई।

परंतु राम के लिये यह अन्य दिनों की तरह एक नये दिन से अधिक कुछ भी नहीं था। आज भी राम दो प्रहर रात्रि रहते ही जाग गए। नित्य–कर्म से निवृत्त हो उगते हुए सूर्य का दर्शन और नमन करने कनक भवन की अटारी पर पहुँचे।

अभी सूर्योदय नहीं हुआ था। एक पतली सी रक्तिम प्रकाश की आभा पूर्व के क्षितिज पर भासित हो रही थी। लगता था जैसे बाल रवि अभी अलसाया हुआ पड़ा है। प्रकृति ने उसे जगाने के प्रयास में अपने आँचल से हवा की, तो पृथ्वी पर मलयसमीर प्रवाहित हो गया। माँ ने कहा, "उठो प्रकाशपुंज, पृथ्वी को तम से मुक्त करो।"

बाल रवि ने आँखे खोल दी; क्षितिज पर सूर्य के ललाट का हिस्सा दिखा। पक्षियों के कलरव ने उसका स्वागत किया। राम और सीता ने कनक भवन की अटारी से उगते हुए सूर्य को अर्ध्य और पुष्पांजलि भेंट की। तभी कनक भवन के पूर्व स्थित कैकेयी भी अपने महल की छत पर सूर्य को नमन करने पहुँची। उसने भी उगते सूर्य को नमन किया। सूर्य अभी पूर्ण रूप से निकला नहीं था। रात की तिरोहित होती श्यामल छाया ने सूर्य पर अभी भी झीना सा आवरण फैला रखा था। सूर्य पर श्यामल छाया देख कैकेयी को भरत की याद आ गई। उसे लगा जैसे भरत रूपी सूर्य विश्व को आलोकित करने हेतु ऊर्ध्वगामी हो रहा है।

सूर्य को नमन कर उसने दक्षिण–पश्चिम दिशा में पीतवर्णी चन्द्रमा को अस्त होते देखा, तभी उसकी दृष्टि सूर्य को नमन करते राम

सीता की जोड़ी पर पड़ी। उसे लगा जैसे प्रकृति भरत को ऊर्ध्वगामी सूर्य और राम को अस्त होते चन्द्रमा का रूपक प्रस्तुत कर रही है। पुत्र के आरोह की कल्पना से कैकेयी आह्लादित हो उठी। राम ने माँ को प्रणाम किया। कैकेयी ने स्वस्ति मुद्रा में हाथ तो उठाया, किन्तु उसके मन से कोई आशीर्वचन नहीं निकला।

कैकेयी जब फिर से पूर्वाभिमुख हुई तो उसने देखा कि एक छोटे से बादल के टुकड़े ने सूर्य को आवृत कर लिया। उसकी श्यामल छाया कैकेयी और उसके भवन पर छा रही थी। कैकेयी ने देखा कि सूर्य पर छाने वाले बादल इतना छोटा था कि उसकी छाया कनक भवन तक नहीं पहुँच पाई। कनक भवन पर खड़े राम अभी भी पूर्ण रूप से सूर्य की रश्मियों से आलोकित हो रहे थे।

प्रातः सूर्य वंदना के लिए के लिए इन दोनों के अलावा एक जन और उपस्थित था– राजा दशरथ भी अपने महल की छत पर अपने कुलदेव को प्रणाम करने हेतु उपस्थित थे। वे राम के प्रणाम और कैकेयी के स्वस्ति मुद्रा में उठे हाथ को देख हुलसित मन से नीचे उतर आए। ब्रह्म मुहूर्त के इस दृश्य ने दशरथ के मन की अंतिम आशंका को भी समाप्त कर दिया। वह आज ही निर्णय लेने का मन बना कर प्रसन्न हो उठे।

कैसी विडम्बना है आशीष और श्राप देने, दोनों में हाथ की एक ही मुद्रा होती है। परंतु वह श्राप है अथवा आशीष, यह देने वाले की मनोभावना पर निर्भर करता है। आज कैकेयी ने रामचंद्र को अस्ताचलगामी चंद्र होने का आशीष दिया। कैकेयी के स्वस्ति में उठे हाथ को राम ने सिर झुका कर स्वीकार किया।

उगते हुए सूर्य को नमन कर दशरथ सदैव अपने को ऊर्जित महसूस करते हैं। किन्तु आज जैसी ऊर्जा तो उन्होंने कदाचित ही अनुभव की हो। क्यों न हो; आज का दिन वर्तमान इक्ष्वाकु कुल के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण होने वाला था। आज के दिन की विश्व में आने वाले युगों–युगों तक कीर्ति–गाथा चलती रहेगी।

किन्तु क्या यह गाथा वही होगी जो दशरथ ने सोच रखी थी? इसे ही दैव, विधना का विधान अथवा भवितव्यता कहते हैं, जिसे न कोई जान सकता है न ही टाल सकता है। ऐसे ही अंधेरे भविष्य में हम कर्म और पुरुषार्थ के सहारे आगे बढ़ते हैं और इसी का भरसक प्रयास राजा दशरथ भी कर रहे थे।

राजा ने बहुत दिनों के बाद आज केसरिया परिधान पहना। आज राम को उत्तराधिकारी बना कर चौथेपन की तैयारी करनी है, सोच कर उन्होंने आज कोई आभूषण नहीं धारण किया। राज सभा में बैठकर उन्होंने अपने सभी विश्वासपात्र सेनापतियों और सामंतों को अपराह्न में उपस्थित रहने का आदेश दिया। उन्होंने गुरु वशिष्ठ से भी तीसरे प्रहर सभा में अवश्य सुशोभित करने की याचना करी। इस घोषणा से सभी जन, कुछ न कुछ विशेष होने की संभावनाओं के प्रति उत्सुक हो उठे। अयोध्या में गुप्तचर व्यवस्था और राजमहल के सूचनाग्राहक सक्रिय हो उठे। वातावरण में एक अजीब सी अनिश्चितता व्याप्त हो गई। लोग अटकलें लगाने लगे।

तीसरे प्रहर भरी सभा में वशिष्ठ से आज्ञा पाकर दशरथ बोले "आप सभी को ज्ञात होगा कि मेरा ज्येष्ठ पुत्र राम अब अपनी आयु के पच्चीसवें वर्ष में प्रवेश कर चुका है। सिद्धाश्रम और मिथिला की घटनाओं से वह अपने पौरुष और पराक्रम सिद्ध कर चुका है। ऋषि वशिष्ठ और विश्वामित्र के संरक्षण में उसका संस्कार और प्रशिक्षण पूर्ण हो चुका है। इससे सम्भवतः गुरुदेव सहमत होंगे" कह कर दशरथ कुछ समय के लिए चुप हो गये।

वशिष्ठ के सहमति में सिर हिलाने के बाद वह फिर बोले, "तब मैं सूर्यवंशी दशरथ, गुरु वशिष्ठ की आज्ञा और आप सबकी की सहमति से अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को कोशल राज्य का युवराज घोषित करता हूँ। मैं अपने कुल–गुरु वशिष्ठ से प्रार्थना करूँगा कि वह राम के अभिषेक के लिए शीघ्रातिशीघ्र निकटतम शुभ मुहूर्त बताने कि कृपा करें।"

वशिष्ठ ने प्रसन्नता से मुस्कराते हुए स्वस्ति मुद्रा में हाथ उठाया, वहीं सारे सभासद खड़े हुए और तालियाँ बजाकर उन्होंने इस घोषणा का स्वागत कर अपनी प्रसन्नता व्यक्त की।

"वर्ष का सबसे मंगलकारी मास जिसमें सारी सृष्टि प्रफुल्ल हो उठती, वही चैत्र मास वर्तमान में चल रहा है। इस चैत्र मास का सबसे पुण्यकारी पुष्य नक्षत्र तो कल ही पड़ रहा है जो राज्याभिषेक के लिए सर्वथा अनुकूल और हितकारी है। यदि आप चाहें तो, अभिषेक का सर्वश्रेष्ठ मुहूर्त कल प्रातः ही उपलब्ध है" कुछ देर गणना करने के बाद वशिष्ठ ने बताया।

"यदि ऐसा श्रेष्ठ मुहूर्त कल ही उपलब्ध हो रहा है तो 'शुभस्य शीघ्रम'। भविष्य किसने देखा है। मैं भी अब वृद्ध हो चला हूँ, मेरे पास कितना अल्प समय है, केवल दैव ही जानता है। अतः यह शुभकार्य मैं अपने सामने और स्वयं के हाथों सम्पन्न होते देखना चहता हूँ। अतः गुरुदेव, आप कल ही राम के तिलक की व्यवस्था का आदेश देने की कृपा करें।"

शीघ्रातिशीघ्र मुहूर्त में राम का अभिषेक? तो क्या विश्वामित्र की योजना व्यवस्था, दशरथ के अचानक लिए इस निर्णय से अस्त–व्यस्त हो जायेगी! यह विचार करते समय वशिष्ठ के माथे पर कुछ रेखाएँ उभर आईं, जिन्हें देख कर राजा ने चिंतित स्वर में पूछा, "कोई विशेष बात गुरुदेव?"

"नहीं, कुछ अति विशिष्ट बात तो नहीं, किन्तु एक व्यावहारिक पक्ष विचारणीय तो है ही। क्या इतनी जल्दी भरत और शत्रुघ्न अपने ननिहाल से इस शुभ कार्य हेतु आ सकेंगे। राम के श्वसुर और आपके सम्बन्धी राजा जनक भी इतने अल्प समय में अपने जमाता के शुभ कार्य में सम्मिलित नहीं हो पाएंगे।"

दशरथ ने कुछ सोचते हुए उत्तर दिया, "गुरुदेव, एक पिता के लिए इससे अधिक पीड़ा दायक क्या हो सकता है कि वह अपने पुत्र का राज्याभिषेक अपने जीते जी न देख सके। मैंने कल रात ही

भयानक दुःस्वप्न देखा है। मैंने देखा कि राम का अभिषेक किये बिना ही मेरा शरीरांत हो गया। प्रिय भरत और शत्रुघ्न भी यहाँ नहीं हैं। मेरी अन्त्येष्टि की आप ही सारी व्यवस्था कर रहे हैं। आपने दोनों राजकुमारों को अयोध्या वापस बुलाने हेतु दूत भेजा है। इस स्वप्न ने मेरे मन को आशंकित कर दिया। अब मैं राम का शीघ्रातिशीघ्र अभिषेक कर देना चाहता हूँ। यह जानते हुए कि प्रिय भरत और शत्रुघ्न इस शुभ अवसर पर यहाँ नहीं होंगे। उन्हें बुलाने में काफी समय लगेगा। परंतु मेरा मानना है कि चिरंजीव भरत और शत्रुघ्न भी मेरी बढ़ती वय की विवशता और आसन्न शुभ मुहूर्त को देख कर वह भी हमारे इस निर्णय का अनुमोदन ही करेंगे। जहाँ तक राजा जनक का प्रश्न है, वह विदेह होते हुए भी, बढ़ती आयु की कठिनाइयों से स्वयं परिचित होंगे। अतएव गुरुदेव, मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप कल ही उस शुभ कार्य को संपादित करने की व्यवस्था करें, तथा राम को इस गुरुतर प्रभार हेतु संस्कारित करने की कृपा करें।"

वशिष्ठ ने मन ही मन दशरथ की नीति की सराहना की। राजा ने कैसा सुअवसर ढूँढ़ा! भरत और उसके मामा सुदूर कैकय प्रदेश में, बढ़ती वय की आड़। राजनीतिज्ञ किस प्रकार प्रत्येक घटना या दुर्घटना को अपना मन्तव्य सिद्ध करने का अस्त्र बना लेते हैं। दशरथ ऐसा नाटक कर रहे थे मानों आज ही एकाएक बुढ़ापा उन पर आन फटा। उस पर कुलगुरु द्वारा आदेशित आसन्न शुभ मुहूर्त! राजा को लाचारी में ही यह आपात्कालीन व्यवस्था करनी पड़ रही है।

सभी घटनायें जैसे दशरथ से पूछ कर ही घटित हो रही हों।

राम के अभिषेक का समाचार अभी राज–दरबार में ही प्रतिध्वनित हो रहा था, कि एक भिक्षुणी ने कैकेयी के महल पर भिक्षा हेतु पुकारा। उसकी आवाज महल के अंदर मन्थरा के कानों तक पहुँची। मन्थरा एकाएक चौकन्नी हो उठी। उसकी सतर्क दृष्टि ने एक सेविका को संदिग्ध भाव से देखा। सेविका निहित आदेश समझ महल के द्वार की ओर दौड़ पड़ी। सेविका के द्वार पर पहुँचने के पहले ही

भिक्षुणी को भिक्षा प्राप्त हो गई थी, फिर भी वह द्वार से टलने का नाम नहीं ले रही थी।

हाँफती हुई मन्थरा की सेविका ने भिक्षुणी से पूछा, "भिक्षा मिलने के बाद भी तू क्यूँ खड़ी है?"

"आज तो मैं विशेष भिक्षा ही लेकर जाऊँगी। रोज की भाँति आज मैं नहीं टलने वाली। आज तो मुझे कुछ अधिक द्रव्य मिलना चाहिए।"

"अच्छा–अच्छा अधिक बक–बक मत कर" कहते हुए मुद्राएं देने के लिए भिक्षुणी के पास जाकर पूछा, "क्या समाचार है?"

"कल ही राम का राजतिलक होना है" भिक्षुणी के स्वर में पर्याप्त रोष और कटुता थी।

सेविका ने समाचार लेते ही उल्टे पैरों भाग कर मन्थरा को कल ही राम के अभिषेक की सूचना दी। सूचना पाकर मन्थरा को सनाका मार गया। इतना घोर षड्यंत्र! भरत को इतनी दूर भेजकर इस अल्पावधि में राजतिलक! क्या बस यही इस युग का अंतिम शुभ मुहूर्त है? राजा का मन भरत की तरफ से अवश्य काला है। राजा भी कौशल्या और राम के साथ इस दुरभिसंधि में सम्मिलित हैं। वह जोर से चीखी, "कैकेयी पर स्नेह–प्रदर्शन! मात्र छलावा है...छलावा !"

मन्थरा के उत्तेजित स्वर से घबरा कर सेविका कैकेयी के पास भागी।

मन्थरा के तन–बदन से क्रोध का ज्वालामुखी फूट पड़ा। उसकी आँखों से चिंगारियाँ व शरीर से ज्वालाएँ निकलने लगीं। वह एकदम काल–ज्वाला प्रतीत हो रही थी।

----------x------x------x----------

दशरथ के अनुरोध पर अभिषेक पूर्व संयम एवं नियम का उपदेश देने वशिष्ठ राम के वर्तमान आवास कनक महल पहुँचे। गुरु आगमन की सूचना पाकर राम शीघ्रता से उनके स्वागत हेतु द्वार पर ही उपस्थित हुए।

"कुलगुरु ! हमेशा की भाँति मुझे ही आदेशित किया होता। मैं स्वयं तत्काल ही उपस्थित हो जाता, आपने इतना कष्ट क्यों किया" वशिष्ठ की चरण रज लेते हुए राम के स्वर में विनय थी, "फिर भी आपके आगमन से मेरा यह आवास पवित्र हो गया। कृपया पधारें।" कहकर राम वशिष्ठ को अंतःपुर ले गये और आसन पर बैठाया।

सीता ने आकर पृथ्वी पर सर रख कर प्रणाम किया। इसके बाद स्वयं विधिपूर्वक वशिष्ठ के चरण धोकर स्वयं अपने आँचल से भलीभाँति पोछ कर आदर से खड़ी हो गईं।

"राम, कभी–कभी राजा के द्वार पर ऋषियों को आना ही होता है। मैं उसका अभ्यास कर रहा हूँ।" वशिष्ठ हँसते हुए बोले।

"मैं समझा नहीं गुरुदेव" राम ने चकित होते हुए कहा।

"रघुवंशी सम्राट दशरथ ने तुम्हें आज अपना उत्तराधिकारी घोषित किया है। आने वाले कल को तुम्हारा राज्याभिषेक निश्चित हुआ है। होने वाले राजा के यहाँ राज्याभिषेक के संयम और नियम, जो तुम्हें और तुम्हारी धर्म–पत्नी को सम्पन्न करने हैं, अवगत कराने हेतु मुझे तो आना ही था?"

राम आश्चर्यचकित हो उठे– "हम चारों भाई लगभग एक साथ ही जन्मे। फिर केवल मेरा ही राज्याभिषेक क्यों?"

वशिष्ठ हँसकर बोले, "राज्य का उत्तराधिकारी एक ही होता है। राज्य निर्वहन का भार ज्येष्ठता के आधार पर नहीं, श्रेष्ठता के आधार पर ही निर्धारित किया जाता है। एकाधिक पुत्रों के होने पर भी राज्य के टुकड़े नहीं किए जाते। राज्य के शीर्ष पर योग्य शक्तिशाली व्यक्ति ही राज्य की एक–सूत्रता बनाए रख सकता है। एकाधिक शक्ति केंद्र होने से शक्ति के बिखराव की संभावनाएं प्रबल हो जाती हैं। यह तथ्य केवल राज्य सीमाओं के लिए ही लिए नहीं वरन् राजमहल के अंदर भी प्रभावी होती हैं। राजा के अतिरिक्त कोई अन्य शक्तिकेंद्र का राजमहल में उदय भी राज्य के लिए हानिकारक हो सकता है।"

वशिष्ठ राम की दुविधा समझ रहे थे। विश्वामित्र की योजना में तो राम के लिए कुछ और ही भूमिका निश्चित थी।

राम की आँखों में कई प्रश्न उभरे। जिनका वह निराकरण चाहते थे, जिन्हें वशिष्ठ समझ रहे थे। फिर भी सभी बातों पर विस्तार से चर्चा कनक भवन में निरापद नहीं थी।

यथार्थतः यह कनक भवन मूलरूप से कैकेयी के लिए ही निर्मित हुआ था। अतः कनक भवन की अधिकतर सेविकाएं कैकेयी की विश्वासपात्र थीं। सीता कनक भवन में आने के बाद कुछ दिनों में ही समझ गईं थीं कि यह सेविकाएं मन्थरा की विशेष कृपा–पात्र थीं। इस तथ्य से परिचित होते हुए ही, सुरक्षा की दृष्टि से, सीता ने पाकशाला प्रबंधन का दायित्व विवाह में साथ आई मैथिल सेविकाओं को सौंप दिया था। इस प्रकार पाकशाला से होने वाले संभावित षड्यंत्र से तो वह आश्वस्त हो गई। फिर भी बाकी सेविकाओं की वजह से हर सूचना के कैकेयी के संज्ञान होने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता था। कैकेयी ने केवल प्रेम के वशीभूत होकर सीता को कनक भवन नहीं सौंपा था!

वशिष्ठ ने मूक संवादों की शृंखला को भंग करते हुए कहा, "राम, आज तुम आयु के पच्चीस वर्ष पूरा करने के उपरांत गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने वाले थे। किन्तु अभिषेक संस्कार के लिए तुम्हें और तुम्हारी वधू को आज की रात भी संयम से रहना होगा। सात्विक स्वल्पाहार के उपरांत कुश–आसन पर शयन करना होगा। कल प्रातःकालीन संध्या और कुल–गुरु सूर्य आराधना के उपरांत मैं तुम्हें राजतिलक हेतु अभिषिक्त करूँगा।"

"राम तुम्हारा और तुम्हारे द्वारा समस्त आर्यावर्त ही नहीं, सम्पूर्ण भरत–खंड का कल्याण हो" कह कर वशिष्ठ प्रस्थान कर गए। राम और सीता द्वार पर गुरु की चरण धूलि लेने के बाद अपने कक्ष में वापस आ गए।

राम और सीता इस आकस्मिक समाचार पर कुछ विचार करते

कि वीरवर लक्ष्मण ने तेजी से आकर बड़े भाई और भाभी को प्रणाम किया। उनकी हर्ष–अश्रुओं से भीगी आँखें देख राम ने उठकर उन्हें गले लगा लिया। लक्ष्मण के चेहरे पर जहाँ हर्ष और आनंद उमड़ रहा था, वहीं राम सदा जैसे धीर और गंभीर थे। उनके चेहरे पर राज्य प्राप्ति के उल्लास का कोई चिह्न नहीं था। उनकी आँखों में लक्ष्मण के लिए केवल अथाह प्रेम ही तिर रहा था।

आलिंगन के बाद लक्ष्मण के कंधों पर हाथ रख कर राम ने कहा, "लक्ष्मण, यह राज्य का भार मैं तुम्हारे और बाकी दोनों भाइयों के नाम पर ही स्वीकार कर रहा हूँ। सम्राट् ने मुझे बड़ा मानते हुए वृहत्तर उत्तरदायित्व को वहन करने हेतु चयनित किया। इस बधाई के तुम तीनों भाई ही वास्तविक अधिकारी हो।"

लक्ष्मण आश्चर्य से बोले, "भ्राता, आप इतने हर्ष के समय भी कैसे तटस्थ रह लेते हो। मेरे मन में तो प्रसन्नता का ज्वार उमड़ रहा है" फिर सीता की ओर मुड़ कर कहा, "अयोध्या की पट्टमहिषी जनक नंदनी सीता को अयोध्या के नए सेनापति का प्रणाम।"

"लक्ष्मण, काया के सिंहासन पर आसीन होते ही छाया का भी उस पर स्वयमेव अधिकार हो जाता है" सीता ने लक्ष्मण के सिर को स्पर्श कर आशीष देते हुए कहा। इसके बाद तीनों लोग माताओं को प्रणाम करने चल पड़े। सबसे पहले वह कैकेयी के कक्ष में गए। कक्ष के दरवाजे बंद थे। राम ने हौले से दरवाजे पर थाप दी। उन्हें ज्ञात था माँ उनकी थाप को पहचानती है। हमेशा की तरह द्वार खुल जाएगा। किन्तु द्वार यथावत् बंद रहा।

उत्साही रामानुज ने आगे बढ़कर जोर से थाप दी। दरवाजा थोड़ा सा खुला। दरवाजे की दराज से मन्थरा का आक्रोशित चेहरा दिखा– "महारानी अस्वस्थ हैं अभी मिलना सम्भव नहीं है; फिर आना।"

राम माँ का कुशल जानने हेतु कुछ पूछें, इसके पहले ही बहुत तेजी से कपाट बंद कर दिये गए। सब चुपचाप कौशल्या के कक्ष को चल दिये।

कैकेयी–मन्थरा गुप्तचर समूह के बाहर, सबसे पहले यह शुभ समाचार छोटी रानी सुमित्रा को मिला। उन्होंने तत्काल ही यह शुभ समाचार कौशल्या को बताया। कौशल्या के लिए यह समाचार अप्रत्याशित नहीं था। राम के शौर्य और गुणों से सारी अयोध्या ही नहीं वरन् राजा दशरथ और गुरु वशिष्ठ भी प्रभावित थे। वशिष्ठ के अनुसार इक्ष्वाकु वंश अब राजा रघु के बाद उनके पुत्र राम से भी जाना जाएगा। माँ की आशा आज फलीभूत हुई। जब तीनों लोग कौशल्या गृह में पहुँचे उस समय वह सुमित्रा को लेकर, ईश्वर को नमन व कृतज्ञता प्रकट करने के निमित्त पूजन–गृह में थीं। राम, लक्ष्मण और सीता ने पूजन–गृह में ही माताओं को प्रणाम किया। दोनों माताओं ने सभी को आशीर्वाद दिया। कौशल्या भावातिरेक से कुछ बोल नहीं सकीं। यह देख सुमित्रा ने कहा "राम, पद जितना बड़ा पद होता है उसके साथ उतना ही उत्तरदायित्व भी स्वयमेय आन पड़ता है" फिर लक्ष्मण से हँसते हुए कहा, "और लक्ष्मण ! राम के अनुगामी होने के कारण तुम्हारा उत्तरदायित्व और भी अधिक हो गया है। अब तुम्हें अपने क्रोध पर नियंत्रण रखना सीखना होगा।"

लक्ष्मण अब भी आठवें आसमान पर थे। अपनी मस्ती में बोले, "माँ, मैं आपको आश्वस्त करता हूँ कि मेरा क्रोध सदैव नियंत्रित रहेगा। हाँ, यदि भ्राता राम के कुछ भी प्रतिकूल हुआ तब उसका शमन कर पाना मेरे लिए सम्भव नहीं होगा।" सबने अनुभव किया कि अंतिम वाक्य पूरा करते करते लक्ष्मण का चेहरा तमतमा गया था।

कौशल्या हत्प्रभ हो गईं। मात्र राम के प्रतिकूलन के विचार से ही लक्ष्मण इतना आंदोलित हो उठता है तो, भगवान् न करे यदि कभी ऐसी परिस्थिति आने पर लक्ष्मण क्या न कर बैठे!

लुब्धक का जाल

दरबार में राम के अभिषेक की घोषणा को समस्त सामंत, ऋषि और दरबारियों का एकमत समर्थन मिलने से राजा बहुत प्रसन्न थे। जिन आशंकाओं से वह सशंक रहते थे वह सभी निर्मूल सिद्ध हुईं।

दशरथ को राजमहल, विशेषकर कैकेयी महल में अयोध्या के उत्तराधिकार सम्बन्धित चल रहे गुप्त प्रयासों का न्यूनाधिक भान था। फिर भी उन्हें विश्वास था कि उत्तराधिकारी का निर्णय होते ही राजमहल के सारे द्वंद्व स्वयमेव समाप्त हो जाएँगे। राजा आज इस अवरोध को भी अपनी युक्ति से पार कर चुके थे। अतः प्रसन्नमुख राजा ने अंतःपुर में प्रवेश किया। सुखद समाचार देने कौशल्या के भवन की ओर वह बढ़े ही थे कि एक काली बिल्ली ने उनका रास्ता काटा। राजा रुक गए। अपशकुनों पर उनका बिलकुल विश्वास नहीं था। परन्तु प्रश्न था कि राज–भवन में बिल्ली का प्रवेश किस प्रकार हुआ? महल में बिल्ली का होना प्रहरियों कि असावधानी दर्शित करती थी। उनकी भृकुटी में बल पड़ गए। फिर यह सोच कर शांत हो गए कि ऐसे शुभ अवसर पर अभी क्षोभ प्रकट करना उचित नहीं।

मनुष्य लाख अंधविश्वासों का अविश्वासी हो किन्तु, फिर भी यदि मन में दुर्बलता अथवा संशय हो तो अपशकुन मन को डराने लगते हैं। दशरथ के भी मस्तिष्क के कोने में अपशकुन की भावना घर कर गई। फिर भी वह चल दिये।

कौशल्या भवन के पहले ही कैकेयी का आवास था। अनायास ही राजा की दृष्टि कैकेयी आवास के द्वार पर गई। यह क्या.. ? भवन में प्रकाश की एक रेखा भी नहीं! राजा कैकेयी भवन के द्वार की ओर मुड़े। द्वार पर ही कुछ वस्त्र और आभूषण जमीन पर बिखरे दिखे। राजा की बाईं आँख जोर से फड़क उठी। उन्हें काली बिल्ली का रास्ता काटने की घटना भी याद आई। वह सहम गए। कहीं कैकेयी अस्वस्थ तो नहीं?

कौशल्या के भवन जाने के बजाय दशरथ को कैकेयी का कुशल जानना अधिक महत्त्वपूर्ण लगा। कुछ भी हो, कैकेयी उनकी सबसे प्रिय पत्नी थी। फिर वह राम को भरत से भी अधिक स्नेह करती थी। इसी स्नेह के चलते उसने कनक भवन और भावी साम्राज्ञी हेतु पूर्व निश्चित चंद्रहार, सीता को पहना दिया था। उन्होंने निश्चित किया कि कुशलक्षेम जानने के अलावा राम राज्याभिषेक की प्रथम सूचना कैकेयी

को देना कूटनीति की दृष्टि से भी वांछनीय है। न चाहते हुए भी राजा ने कैकेयी के भवन में प्रवेश किया।

शकुन–अपशकुन और प्रहरियों की लापरवाही में डूबे राजा दशरथ पास के ही एक खंभे के पीछे खड़ी मन्थरा और उसकी कुटिल मुस्कान को नहीं देख पाये।

कैकेयी के भवन–द्वार के पास एक खंभे की आड़ में खड़ी मन्थरा राजा के भावों को बड़ी सूक्ष्मता से देख रही थी। उसके मुँह पर कुटिल मुस्कान छा गई। राजा के मार्ग में उसका काली बिल्ली छोड़ने का कुचक्र सफल हो गया। यदि उसकी बिल्ली ने रास्ता न काटा होता तो राजा सीधे कौशल्या के भवन चले जाते, और सुबह होते राम राजा बन गए होते। किन्तु अब राजा का कैकेयी के नागपाश में बँधना निश्चित था।

"पुरुष के लिए त्रिया–चरित्र अस्त्र सदैव अमोघ रहा है। दशरथ तो वैसे भी अपनी बढ़ती अवस्था के चलते कैकेयी का अक्रीत दास रहा है" अपने दुष्प्रयास मे सफल कुब्जा बड़बड़ाती हुई अपने आवास को चल दी।

मन्थरा को ज्ञात था कि कैकेयी बहुत ही विदुषी एवं कूटनीतिज्ञ है। राजा उसके बस में हैं। इतना सब होते हुए भी कैकेयी कभी–कभी भावुक हो उठती है। ऐसे क्षणों में वह औघड़दानी हो जाती है। भावुकता के उन क्षणों में वह अपने और अपने पुत्र का कल्याण भूलकर अपना सर्वस्व तक दान करने को तत्पर हो सकती है। मन्थरा मन में प्रार्थना रही थी की आज, बस आज की रात, हे ईश्वर, बस केवल आज की रात कैकेयी को भावुकता का दौरा न पड़े; तो सभी मंगलमय होगा।

मन्थरा अपने आवास में आकर लेट तो गई, परन्तु आज रात उसकी आँखों में नींद नहीं आ रही थी। कैकेयी के भवन में क्या चल रहा है, रानी दशरथ को अपने पाश में जकड़ सकी अथवा नहीं– यह जानने की उसकी अदम्य इच्छा हो रही थी। क्यों न हो। आज की रात कैकेयी और भरत के साथ उसके भविष्य का निर्णय होने वाला था।

राजमहल की अन्य सेविकाओं की नियति तो मात्र सेविका तक ही थी। उनको कोई अंतर नहीं पड़ता था कि राजा राम हों या भरत। परंतु मन्थरा व उसके साथ की सभी सेविकाओं के लिए यह जीवन और मृत्यु का प्रश्न था। सत्ता की निकटता के जहाँ कुछ लाभ है तो, उतनी ही विकट हानि की भी संभावना हो सकती है।

मन्थरा को पता ही नहीं चला कि कब वह प्रगाढ़ निद्रा में खो गई। स्वप्न में भी वह अयोध्या के उत्तराधिकार से सम्बन्धित स्वप्न देख रही थी। स्वप्न में मन्थरा को आभास हुआ कि उसका शरीर एकदम हल्का हो गया है। इतना हल्का कि वह हवा में उड़ सकती है। हवा में उड़ते हुए मन्थरा अपने कक्ष का एक चक्कर लगाने के बाद वह कैकेयी के भवन की ओर उड़ चली। कैकेयी के भवन में घुप्प अंधकार था। दूर एक नन्हा दीपक टिमटिमा रहा था। नन्हें दीपक के प्रकाश क्षेत्र में कोई अस्पष्ट मानवाकृति जमीन पर पड़ी थी। मन्थरा हवा में तैरती हुई उस आकृति के पास गई। आकृति को देखते ही उसका दिल धक से हुआ। अयोध्या नरेश दशरथ भूमि पर असहाय पड़े थे। उनके सीने पर एक विशाल नागिन बैठी फुफकार रही थी। राजा पसीने–पसीने हो रहे थे। मन्थरा ने बड़ी कठिनाई से अपनी चीख रोकी। अचानक चीखने के शोर से नागिन राजा को डँस सकती थी। मन्थरा हौले–हौले उसके पास गई। उसने पहचाना यह कैकेयी थी, जो नागिन रूप में राजा के सीने पर चढ़ कर डँसने को उद्यत थी। मन्थरा और पास गई। इतने पास कि वह नागिन के विषदंत भी देख सकती थी। रानी के दो वरदान ही इस समय उस नागिन के भयानक विषदंत थे। नागिन ने लहराते हुए अपनी पूँछ कुंडली में समेट ली। असहाय राजा डँसने को उद्यत सर्पिणी को देखकर चिल्लाये, "मुझे जीते जी मत मारो कैकेयी, राम के बिना मैं जीवित नहीं रह सकता।" इस चेतावनी से भी सर्पिणी की मुद्रा में कोई परिवर्तन नहीं देख कर दशरथ ने फिर आर्तनाद किया "कैकेयी, अयोध्या का उत्तराधिकार मैं सहर्ष भरत को देने को प्रस्तुत हूँ, किन्तु राम को वनवास मत दो। राम को तो तुम भरत से भी अधिक स्नेह करती थीं। मेरे कहने पर राम स्वयं

ही भरत के लिए गद्दी त्याग देगा। किन्तु उसे मेरी आँखों से मत ओझल करो।"

नागिन रूपी कैकेयी फुफकारते हुए बोली, "सर्प और वैरी को घर में खुला छोड़ना मूर्खता है, राजन, और तुम भली–भाँति जानते हो कि कैकेयी मूर्ख नहीं है। राम को चौदह वर्ष के लिए वल्कल वस्त्रों में दंडक वन तो जाना ही होगा। दोनों वरदानों से कम मुझे कुछ भी अभीष्ट नहीं", कह कर नागिन ने अपने दोनों विषदंत राजा के मर्मस्थल पर चुभा दिये। दंश लगते ही राजा चीत्कार कर उठे।

यह दृश्य इतना भयानक था कि मन्थरा की आँखे स्वतः मुँद गईं; वहीं राजा की चीत्कार ध्वनि इतनी भयानक थी कि मन्थरा को अपने कान भी बंद करने पड़े। कुछ समय के बाद जब मन्थरा की आँखें खुलीं तो उसने देखा कि राजा का शरीर निढाल पड़ा था। उसमें कोई चेतना परिलक्षित नहीं हो रही थी।

राजा के निष्प्राण शरीर को देख कर पहले मन्थरा विचलित हुई फिर एकाएक आतंकित हो उठी। "मूर्ख, यदि राजा मर गया तो भरत को उत्तराधिकारी कौन घोषित करेगा? कल सुबह पहले से ही घोषित उत्तराधिकारी राम, राज–सिंहासन पर अभिषिक्त हो जाएगा। मृत राजा की अन्त्येष्टि, दशरथ का ज्येष्ठ पुत्र और अयोध्या का राजा ही करेगा। राजा कभी नहीं मरता!" मन्थरा धीरे–धीरे चल कर राजा के पास गई। उसकी नाक के पास उंगली रख कर देखा– राजा जीवित था, उसकी साँसें धीरे ही सही किन्तु चल रही थीं। मन्थरा ने कैकेयी की ओर देखा। कैकेयी मन्थरा की ओर देख कर मुस्कराई। मन्थरा वह मुस्कान देख कर काँप उठी। मुस्कराहट में कैकेयी के केवल होठ ही हिले थे; उसकी आँखों में हँसी नहीं, आक्रोश की ज्वाला धधक रही थी।

मन्थरा की नींद एकाएक खुल गई। उसे पता ही नहीं चला कि वह कब सो गई और कब स्वप्न देखने लगी। उसका पूरा शरीर पसीने में भीग चुका था। जीवन में पहली बार उसने कैकेयी का असली रूप

देखा। विषैली नागिन सा अपना क्रूर व्यक्तित्व कैकेयी ने अभी तक अपनी सुंदरता और बुद्धिमत्ता के आवरण में छिपा रखा था।

आज मन्थरा ने जीवन में पहली बार कैकेयी का वह वीभत्स रूप देखा।

मन्थरा कैकेयी से भयभीत हो उठी...

----------x------x------x----------

कैकेयी का भवन, जो रात्रि में भी अनेक दीपों और दीपदानों के आलोकित रहता था, आज पूर्ण अंधकार में था। राजा अंधकार में ही आगे बढ़ते गए। यदाकदा उनके पैरों की ठोकर से धरती पर गिरा कोई आभूषण खनखनाता हुआ दूर चला जाता था। राजा ने रानी के निद्रा–कक्ष में प्रवेश किया। दूर एक दिया टिमटिमा रहा था। जमीन पर पड़ी कैकेयी द्वारा त्यागी साड़ी का अनुगमन कर राजा आगे बढ़े, तो रानी शैय्या पर नहीं दिखी। दशरथ चिन्तित हो उठे। तभी शैय्या के बाएं में पार्श्व धरती पर बिखरी एक आकृति दृष्टिगत हुई। भूमि पर अस्तव्यस्त वस्त्रों में असहाय सी पड़ी कैकेयी दिखी। किसी अनहोनी की आशंका से दशरथ ने जल्दी से आगे बढ़ कर कैकेयी के शरीर को स्पर्श किया। शरीर ठंडा नहीं था, साँसे चल रही थीं। राजा आश्वस्त हुए कि कैकेयी को कोई भयानक व्याधि नहीं थी।

फिर एकाएक दशरथ मन ही मन कुछ सोच कर मुस्करा उठे। उन्हें लगा कि आज कैकेयी में रूठने–मनाने के स्वांग की अभिलाषा उठी है।

पिछले कुछ समय से राजकार्यों और कूटनीति में उलझे रहने के कारण राजा हास–विलास से दूर हो गए थे। आज अपनी नीतियों की सफलता के बाद उनका दिल उत्साहित था। सुंदरी पत्नी के प्रेमिका रूप ने उनमें शृंगार जगा दिया। उनका शरीर पुलकित हो उठा।

बूढ़े पति के लिए तरुण पत्नी जितनी मादक होती है उतनी ही घातक भी हो सकती है!

दशरथ प्यार से रानी का हाथ पकड़ कर सहलाते हुए बोले, "मानिनी, आयु के इस मोड़ पर भी मान करती हुई बहुत सुंदर लगती हो।"

रानी ने हाथ झटक दिया। मान–मनौव्वल में ऐसा होता ही है। राजा फिर बड़े प्रेम से रानी का चेहरा अपनी ओर मोड़कर कुछ कहना चाहते थे कि इस बार रानी ने काफी तेजी से उनका हाथ झटका। इस बार हाथ झटकने की बल और तेजी में शृंगार की जगह तिरस्कार की अनुभूति थी। राजा को क्रोध आया, परन्तु तत्काल ही उसे दबाते हुए राजा बोले, "कल्याणी, किसने तुम्हारा अपकार किया है जिससे तुम क्रुद्ध हो। तत्काल ही मुझे उसका नाम बताओ। सारी सृष्टि में वह जहाँ कहीं भी होगा उसे मैं पकड़वा मंगाऊंगा। उसको मैं ऐसा दंड दूंगा, कि आज के बाद तुम्हें कोई भी रुष्ट करने का साहस नहीं करेगा।" कैकेयी चुप रही।

"और यदि तुम मुझसे रुष्ट हो तो बताओ तुम्हें प्रसन्न करने के लिए क्या उद्यम करूँ?" इस बार कैकेयी ने राजा की ओर करवट ली। राजा की आँखों में व्याप्त काम भाव से कैकेयी भली–भाँति परिचित थी। वह समझ गई कि पुष्प–बाण अपना लक्ष्य भेदन कर चुका। अब मान छोड़ कर उसे मुद्दे पर आना चाहिए। वहीं कामुकता में डूबी राजा की आँखें, रानी की आँखों की ज्वाला नहीं पहचान सके।

"तुम्हारी प्रसन्नता हेतु मैं सबकुछ करने को तैयार हूँ। बोलो प्रिये तुम्हें क्या चाहिए?" राजा के स्वर में अभिसार की आतुरता थी

राजा के स्वर व भंगिमा से राजा की आतुरता की चरम सीमा को भाँप रानी ने ठुनकते हुए मान किया, "अभिसार के समय दिये गए अधिकतर वचन, बाद में याद नहीं रहते।"

दशरथ ने तड़प कर पूछा, "ऐसी कौन सी तुम्हारी कामना रही है जिसे मैंने पूरा नहीं किया? फिर भी, आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तुम कुछ भी मांग सकती हो। मैं देने मे तनिक भी विलम्ब नहीं करूँगा।"

"क्यों, वर्षों पहले दिये दो वचन क्या आपने पूरे किए ?"

दशरथ ने हँसते हुए कहा, "पूरे कैसे करता। तुमने वह दो वचन मांगे ही नहीं। केवल उपालंभ ही देती रहती हो। कभी मांगकर तो देखो।"

"जिह्वा लोलुप मैं हूँ नहीं, साज शृंगार की मेरी वय रही नहीं; मैं साम्राज्ञी हूँ राजन! मेरी आकांक्षा साधारण नारियों से कहीं ऊपर है।"

"तो माँग कर तो देखो रानी। राम और भरत जैसे सुपुत्रों की माँ होने के बाद अब तुमको कौन सी वस्तु अलभ्य है ?"

"मैं इन्हीं दोनों के लिए ही तो माँगना चाहती हूँ, किन्तु आप तो वचन देने के बाद आज भी टाल–मटोल कर रहे हैं।"

"यह मैं जानता हूँ प्रिये, तुम्हारे यह दोनों वचन भी राम और भरत के हित में ही होंगे। अतः मैं एक बार अपना वचन फिर दुहराता हूँ। जो भी तुम्हें पुत्रों के लिये प्रिय हो माँग लो। मैं देने में किंचित् मात्र नहीं हिचकूँगा।"

"और यदि फिर भी नहीं दिया तो...?"

"आज राम के अभिषेक के उपलक्ष्य में मैं कुछ भी दे सकता हूँ।"

कैकेयी ने फिर कसा, "मैं पूछती हूँ यदि फिर भी आपने नहीं दिया राजन, तो ?"

दशरथ जैसा कुशल शिकारी भी लुब्धक के पाश को नहीं भाँप सका। रानी को प्रसन्न करने की उत्कंठा में उन्होंने वह पाश स्वयं ही अपने गले में डाल लिया– "मुझे राम की सौगंध! मेरे पूर्वज और कुलदेवता इस सौगंध के साक्षी हों कि आज मैं तुम्हारे दोनों वांछित वर एक साथ ही प्रदान करूँगा। जो चाहो आज ही मांग लो। अपने मन की सारी हुलास आज और अभी पूरी कर लो।"

आखेट को पूर्ण रूप से फँसा देख लुब्धक ने फंदा खींचा "ठीक है, पूर्वज और देवता साक्षी हों– मेरा पहला वर है मेरे पुत्र भरत का राज्याभिषेक...।"

दशरथ सन्न हो गए। कैकेयी ने एक ही वाक्य में उनकी कूटनीति और राजनीति को मात दे दी।

"...मेरा दूसरा वर, राम को चौदह वर्ष का वल्कल वस्त्रों में दंडकवन में वन...वास।"

राम को चौदह वर्ष का वन...वास! दशरथ को लगा कि यह आवाज नहीं विस्फोट था, एक धमाका था। एक–एक शब्द पिघले सीसे कि तरह उनके कानों से हृदय में उतर गये। उनका दग्ध हृदय चीत्कार कर उठा। इसके पहले कि इन शब्दों का अर्थ मस्तिष्क समझ सके दशरथ को चक्कर आ गया। सारा शरीर काँपने लगा। उन्होंने सहारे के लिए हाथ फैलाया, किन्तु कैकेयी ने सहारा देने का तनिक भी प्रयास नहीं किया। वह मूर्तिवत् निस्पृह भाव से राजा की दुर्दशा देखती रही। स्वार्थ में मनुष्य पाषाण से भी कठोर हो जाता है। दशरथ अचेत होकर धरती पर गिर गये।

कैकेयी इसे दशरथ का नाटक मान रही थी ।

दशरथ इस अप्रत्याशित मानसिक आघात को नहीं झेल सके। कुछ देर जमीन पर संज्ञा शून्य लेटे रहे। लेटने से मस्तिष्क के रक्त संचार व्यवस्थित होने से उनकी चेतना लौटी। उन्होंने उठने का प्रयास नहीं किया। सम्भवतः वह अपनी दुर्गति प्रदर्शन से कैकेयी के भीतर करुण भावना जगाने के प्रयास कर रहे थे। किन्तु कैकेयी वैसी ही निष्ठुर बनी रही।

दशरथ जान रहे थे कि वह राम की सौगंध के पाश में पूरी तरह से जकड़ चुके हैं। केवल कैकेयी ही उन्हें इस पाश से मुक्त कर सकती है। अतः कैकेयी से प्रार्थना करते हुए दशरथ आर्त स्वर में बोले, "भाग्यवान्, जैसे भरत तुम्हें प्यारा है उतना ही वह मुझे भी प्रिय है। मैं और कौसल्या क्या, स्वयं राम के दिल में भरत के लिए किंचित् मात्र भी द्वेष नहीं है। भरत और राम के बल, शील और गुणों में बहुत साम्यता है। राम के ज्येष्ठ होने की वजह से उसे मैंने युवराज बनाया है।"

"तुमसे उत्पन्न पुत्र का राज्याभिषेक करने की बात कालवश विस्मृत हो गई थी। मैं अभी गुरु वशिष्ठ को कहकर भरत को उत्तराधिकारी घोषित करता हूँ। ननिहाल से लौटते ही प्रिय भरत का अभिषेक हो जाएगा" कहकर राजा समझे कि इतने में कैकेयी मान जाएगी और राम वन जाने से बच जाएंगे।

किन्तु मानने के स्थान पर कैकेयी अत्यधिक हिंस्र हो उठी, "नहीं, राम के वन गमन के पहले न तो मेरा बेटा अयोध्या लौटेगा और न ही उसका अभिषेक होगा। पहले राम वन को प्रस्थान करेगा उसके बाद ही अयोध्या में भरत का कल्याण सम्भव है।"

महत्त्वाकांक्षा एक उत्तम गुण है; किन्तु एक निश्चित सीमा तक। महत्त्वाकांक्षा जब स्वार्थवश अविवेकी होकर आत्म केंद्रित हो जाती है, तब वह सामने आने वाली सभी बाधाओं को नष्ट कर देना चाहती है। अपने प्रतिद्वन्द्वियों के सम्पूर्ण विनाश से कम उसे कुछ भी स्वीकार्य नहीं होता। ऐसे में वह अत्याचारी भी हो उठती है। कैकेयी की महत्त्वाकांक्षा इस समय कुछ ऐसी ही थी। वह हर प्रकार अपने पुत्र का मार्ग निष्कंटक करना चाहती थी।

"राम भरत को इतना स्नेह करता है कि वह अपने हाथों से भरत का अभिषेक कर देगा। इसके लिए मात्र मेरा अथवा केवल तुम्हारा संकेत ही यथेष्ट है। फिर तुम राम को क्यों वनवास देना चाहती हो?"

कैकेयी व्यंग्य बोली, "नहीं राजन, इतनी नीति तो मैं भी जानती हूँ। राज सत्ता से अधिक मादक वस्तु कोई नहीं है। एक व्यक्ति से सत्ता छीन कर जब दूसरे को दी जाती है तब दोनों में शत्रुता उत्पन्न हो जाती है। ऐसे में राम का अयोध्या में रहना मेरे पुत्र के लिए घातक हो सकता है। राम के चौदह वर्ष के वनवास से मैं इस आशंका को सदैव के लिए निर्मूल कर देना चाहती हूँ।"

फिर एकदम से तमकते हुए कह उठी, "यदि तुम मेरे दोनों वरदान नहीं दे सकते हो तो साफ–साफ बताओ। मैं दोबारा तुम से

कुछ नहीं कहूँगी। एक तरफ तुम्हारा सत्यवचन होने का ढोंग टूटेगा और दूसरी तरफ मैं आत्मदाह कर लूँगी। तब तुम आराम से कौशल्या को राजमाता और राम को सिंहासन पर बैठा कर जीवन भर उसके बच्चों को खिलाते हुए अपना बुढ़ापा काटना।"

दशरथ जान गए कि कैकेयी पुत्र मोह में अंधी हो चुकी है। उसे अपना, अपने परिवार का कल्याण पुत्र प्रेम के सम्मुख गौण प्रतीत हो रहे हैं।

"देवी, तुम जानती हो कि मेरा जीवन राम पर आधारित है। मैं राम के वियोग में जीवित नहीं रह सकूँगा। यदि तुमने राम वनवास का अपना हठ नहीं छोड़ा तो उस वृद्ध ब्राह्मण का श्राप सत्य हो उठेगा। विचार कर लो तुम सौभाग्य वस्त्रों में भरत का राज्याभिषेक देखना चाहोगी अथवा वैधव्य के श्वेत वस्त्रों में?" उन्होंने अंतिम बार कैकेयी में भावुकता जगाने का प्रयास किया।

"मेरा पहला वचन– राम को वनवास और दूसरा भरत को राज तिलक है। इससे कम मुझे कुछ स्वीकार नहीं।"

राम को वनवास, भरत को राज–गद्दी– इन वचनों के दोनों खंजर रानी ने एक बार में ही राजा के हृदय में घोंप दिये।

-----------x------x------x------------

विश्वामित्र से राजा के हृदय में खंजर घोपने की बात सुन कर गौरी जो अभी तक किसी प्रकार अपने आँसुओं को रोके थी, एकाएक जोर से सिसक उठी, और आँखों पर आँचल रख कर कक्ष से बाहर निकल गई। विश्वामित्र की कथा रुक गई।

कौस्तुभ पहले गौरी की ओर जाने को हुआ फिर कुछ रुक कर विश्वामित्र से बोला, ''क्षमा करिएगा मुनिवर, हम लोगों ने इन दुखद पलों को भोगा है। उन पलों की स्मृति से गौरी भावुक हो गई। मैं अभी उसे बुलाकर ला रहा हूँ'' कौस्तुभ के स्वर में पर्याप्त अपराधबोध था।

''मैं समझ सकता हूँ। यह प्रसंग रामकथा के सबसे मार्मिक प्रसंगों में है। और कैकेयी के इन दो वचनों ने पूरे भरतखंड और स्वयं राम के जीवन में बहुत बड़े परिवर्तन की रूपरेखा का निर्माण कर दिया।

कथानक के इसी बिन्दु से राम का 'संघर्ष काल' प्रारम्भ हो गया; और जो व्यक्ति संघर्षों का डट कर सामना करता है उसका व्यक्तित्व कठिनाइयों की सघनता के अनुपात में विस्तारित होने लगता है। और यदि यह संघर्ष लोकहित और सामान्य जनहित में हो तो वह मानव महामानव बन जाता है। विश्वामित्र गवाक्ष की ओर देख कर बोले, ''मैं समझता हूँ कौस्तुभं, किन्तु अब ब्रह्म मुहूर्त हो गया। मेरी प्रातः संध्या का समय हो गया है। तुम लोग भी नित्य कर्म से निवृत्त हो। यदि चाहोगे तो अपराह्न में वार्ता होगी।''

फिर कुछ सोचकर उत्साह से बोले, ''अपराह्न की यह वार्ता राम के 'संघर्ष काल' का वृत्तान्त कहेगी।

इस प्रकार 'श्यामल काया गोरी छाया' उपन्यास का 'संस्कार काल' समाप्त हुआ।

आगे का वृत्तान्त अगली कड़ी 'संघर्ष काल' में।

परिशिष्ट

- विश्वामित्र का राम–लक्ष्मण के साथ सिद्धाश्रम (बक्सर) से जनकपुरी के मार्ग का आधुनिक मानचित्र।
- विश्वामित्र के साथ राम–लक्ष्मण का पहला पड़ाव अयोध्या क्षेत्र में ही सरयू तट पर हुआ। जहाँ विश्वामित्र जी ने दोनों को बला एवं अतिबला नाम की विद्याओं से अभिषिक्त किया।
- **दूसरा पड़ाव**–गंगा सरयू के संगम पर जो वर्तमान में बलिया जिला में पड़ता है।
- अगले दिन गंगा पार कर ताटका वन पहुँचे जो वर्तमान में बक्सर जिले में है।
- बक्सर से विश्वामित्र अपने सिद्धाश्रम पहुँचे जहाँ राक्षसों का नाश कर उस तपोभूमि को आततायिओं से निरापद किया।
- सिद्धाश्रम में कुछ समय रहने के बाद विश्वामित्र, राम व लक्ष्मण 'धनुष यज्ञ' दर्शन हेतु मिथिला की ओर चले।
- पटना के निकट पहले शोण नदी पार कर गंगा के दक्षिणी किनारे पहुँच कर रात्रि विश्राम किया।
- अगले दिन गंगा पार कर तीनों विशाला नगरी (आधुनिक वैशाली नगर) के वन प्रदेश में विश्राम किया।
- अगले दिन ये लोग मिथिला राज्य में स्थित गौतम ऋषि के आश्रम पहुँचे और वहाँ से जनकपुरी (मधुबनी, बिहार) के उपवन में डेरा डाला।
- जनश्रुति है कि जनकपुरी के पास ही नेपाल में स्थित मटिहानी गांव की माटी से ही सीता के विवाह की वेदी बनाई गई थी। तब

से आज भी जनकपुर की कन्याओं के विवाह के लिए मटिहानी गाँव की माटी आज भी प्रयोग होती है।

- जनकपुर जो राजा जनक की राजधानी नेपाल में बार्डर के बीस किलोमीटर अंदर स्थित है। यहीं धनुष यज्ञ की रंग–भूमि का निर्माण हुआ था।
- **सीतामढ़ी**– नेपाल में स्थित जो सीता की जन्मभूमि माना जाता है। कहते है अकाल के समय हल चलाते हुए जनक को सीता मिलीं थीं।
- राम विवाह के बाद बारात सीता–कुंड (मोतीहारी), डेरावन (गोरखपुर उ0प्र0। दोहरी घाट (मऊ, उ0प्र0) होते हुए घाघरा (सरयू) नदी पार कर अयोध्या वापस लौटी।
- **दोहरी घाट**– वाल्मीकि रामायण के अनुसार श्री हरि–विष्णु के दो अवतार, राम–परशुराम का संवाद इसी स्थान पर हुआ था। अतः इसे दो हरि (राम और परशुराम) घाट कहते हैं।

167

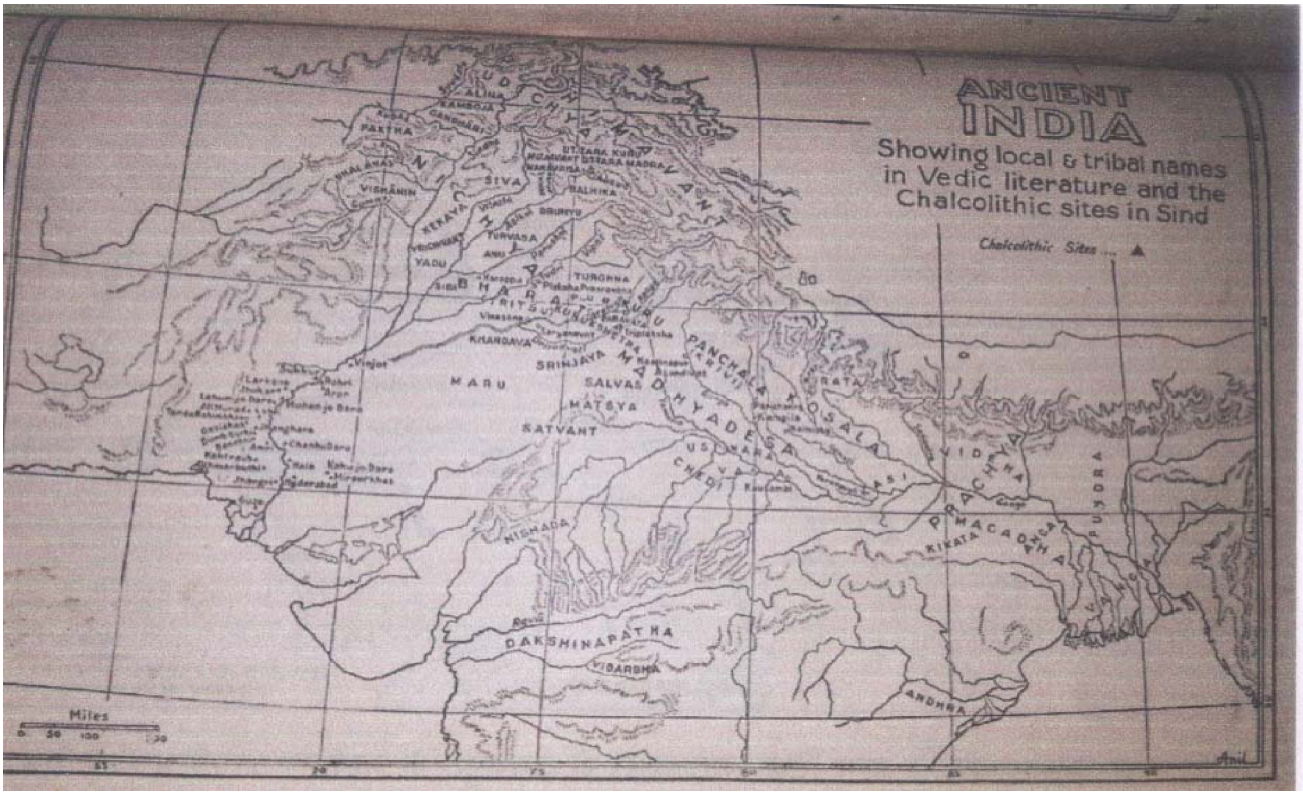

168

श्यामल काया गोरी छाया